लेखकके कुछ शब्द

इस किताब के बारे में कुछ शब्द मुझे कहने हैं। खुद किताबसे, शायद ये शब्द ज्यादा क़ीमती हों। इसलिये ज्यादा सतर्क होकर, और ज्यादा निश्चयसे मैं उन्हें कहूँगा।

मैंने इसमें काफी स्वतन्त्रतासे काम लिया है। पर, विश्वास है, उसका दुरुपयोग ं किया। जो दुरुपयोग नहीं करता, उसके हाथमें मैं ज्यादे-से-ज्यादे स्वत- देनेसे नहीं डरता। जो जानता है स्वतंत्रता बड़ी क़ीमती चीज़ है, उसका ाय और उसका कदर्य उपयोग करना मानों उसकी हत्या करना है, वह त्रता अपनायेगा तो उसे कोई नही टोक सकेगा। मैं यही कहता हूँ।

क्या कहूँ, और कैसे कहूँ,—इन दोनों बातोंमें मैंने किसी नियमको सामने नहीं रक्खा है। हाँ, लेखकके दायित्वको और स्वतंत्रताके मूल्यको प्रत्येक क्षण सामने रक्खा है। मैंने सदा ध्यान रक्खा है, जो दूँ उसमें अपनेको धोखा न दूँ, र दुनियाको धोखा न दूँ। लेखकका काम बड़ी जोखमका है, मैं समझता हूँ, किताबमे मै उसे कहीं नहीं भूला हूँ।

भाषाका शिकजा है, न भावका। दोनों किसी कोडके नियमोंमें बंधकर कते। जिसे बढना है, वैसी कोई भी चीज शिकजेमें कसी नहीं रह सक. . शिकजेमें कस दोगे तो वह नहीं बढ़ेगी, लुज रह जायगी,—हम उसीको सुन्दरता मानने लग जायँ तो बात दूसरी, पर,—दुनियाकी स्पर्द्धा और दौड़में ्ह कहींकी नही रह सकती। जैसे चीनी स्त्रियोंके पैर। हिंदीभाषा-भाषियों और भाषा-लेखकोंको यह सत्य, पूरे हर्षसे और बिना ईर्ष्याके, मान लेना और अपना लेना चाहिये। भाषाका और दुनियाका हित इसीमें है।

उपन्यासमें जैसी दुनिया है वैसी-ही चित्रित नहीं होती। दुनियाका कुछ उठा-हुआ, उन्नत, कल्पित रूप चित्रित किया जाता है। वह उपन्यास किसी कामका नहीं जो इतिहासकी तरह घटनाओंका बखान कर जाता है। कामसे मतलब, वह

दुनियाको आगे बढाने और बढ़नेमें जरा मदद नहीं देता। क्यो कि न वह इतिहास होता है, न उपन्यास ही। इतिहासका अपना मूल्य है। वह विश्वकी प्रगतिके मार्गका नकशा हमारे सामने रखता जाता है। इसी तरह साहित्यके हर 'प्रकार' का अपना मूल्य है। उपन्यासका काम है, कुछ आगेकी, भविष्यकी संभावनाओंकी जरा झॉकी दिखाना। और जो कुछ अब है, उसकी तह हमारे सामने खोलकर रख देना। उपन्यास एक नये, अजीब ही ढंगसे रँगे, और उपादेय जीवनका चित्र हमारे सामने रखता है। जीवनके साधारण–कृत्य और उलझी गुत्थियोंको सुलझाकर और खोल-खोलकर रख देता है। उपन्यास, इस तरह, सत्यमे स्वप्नकी पुट देकर, वास्तवमें कल्पना मिलाकर, व्यवहारसे आदर्शका साम्य और सामञ्जस्य स्थापित कर, और वर्तमानपर भविष्यका रग चढाकर, जीवनका वह रूप पेश करता है, जो जीवनसे मिलता-जुलता है फिर-भी अनोखा है, जिससे मनोरजन भी प्राप्त होता है और शिक्षा भी, और जिससे, हठात्, एक नई चीज हृदयमें पैठ जाती है और हम जरा आगे बढ जाते है। हमे मालूम भी नही होता, पर एक संस्कार, एक नई बात, धीरे-धीरे उगना आरभ हो जाती है। वह शिक्षा और वह नई चीज अमुक शब्दो और वाक्योंमे नही होती, उपदेशात्मक नहीं होती, बहुत अधिक प्रकट और विवेचन-गम्य नही होती। और वह बहुत-कम विश्लेषण और मस्तिष्ककी पकडमे आ पाती है। चित्रमें भावकी तरह, वह सारी कृतिमें रमी रहती है। मस्तिष्ककी विवेचनाको पार कर हृदयकी अनुभूतिमें सीधी जाकर ऐसी चुभती है कि, चाहे मस्तिष्क बौखलाता ही रह जाय, हृदय हिल जाता है। मस्तिष्क उसका उद्देश्य ढूँढने और पकड़नेमे ही उलझा रह जाता है, उधर व्यक्तिको कुछ क्षणकी तन्मयता, एक आनद, रस, एक शक्ति, एक प्रकारकी आत्मानुभूति प्राप्त हो चुकी होती है। जो तीरकी तरह अन्त तक जा लगे, बुद्धिके पटल और जालको भेदकर मर्ममें घुस जाय, और हलचल उपस्थित कर दे, वह,—विद्वान् चाहे कितना ही उसे पहेली कहे, विद्वत्ता उसका मतलब (What it means ?) समझनेमें कितनी ही अकृतकार्य रहे, और वहाँ उद्देश्य (?) का कितना ही अभाव दीखे,—वह सच्ची चीज है, उपादेय है, और वह जीने और जिलानेके लिये आई है। वह कला है। अर्थ–अर्थी जगत् अपनी 'उद्देश्य-पूर्णता 'की परिभाषाके घेरेमें उसकी उपयोगिताको न बाँध पाये, इसमें अचरज नहीं। प्रत्युत यह तो बिल्कुल स्वाभाविक

और सभवनीय है। पर इससे जगत्को चिढना न चाहिये, न हठात् उस कलाको निर्वासित और संकुचित करनेकी कोशिश करनी चाहिये। इससे उसकी उपयोगिता न कम वेगवती होती है न कम मूल्यवती, और न ही कम आदरणीय।

कलाविदों और संपादक-कोविदोंकी छानबीनके लिये ये शब्द, जरूरी समझकर और झिझकते मनसे, उनकी सेवामें पेशकर दिये जाते हैं।

मैने जगह-जगह कहानीके तारकी कड़ियाँ तोड़ दी हैं। वहाँ पाठकको थोड़ा कूदना पड़ता है। और मैं समझता हूँ पाठकके लिये यह थोड़ा आयास वांछनीय होता है,—अच्छा ही लगता है।

कहीं एक साधारण भावको वर्णनसे फुला दिया है, कहीं लम्बासा रिक्त (Gap) छोड़ दिया है; कहीं बारीकीसे काम लिया है, कहीं लापर्वाहीसे; कहीं हलकी-धीमी कलमसे काम लिया है, कही तीक्ष्ण और भागतीसे,—मै समझता हूँ, यह सब कुछ चित्रमें खूबी और अस्लियत लानेके लिये जरूरी हो पड़ता है। यह कम-ज्यादे रंगकी शोभा रंग-बिरंगेपनमे और स्वाद देती है।

एक और भी बात है। सभी पात्रोंको मैने अपने हृदयकी सहानुभूति दी है। जहाँ यह नहीं कर पाया हूँ उसी स्थलपर, समझता हूँ, मै चूका हूँ। दुनियामें कौन है जो बुरा होना चाहता है,—और कौन है, जो बुरा नही है, अच्छा ही अच्छा है? न कोई देवता है, न पशु। सब आदमी ही है, देवतासे कम ही है, और पशुसे ऊपर ही। इस तरह किसे अपनी सहानुभूति देनेसे इकार कर दिया जाय?

पाठकोंसे एक विनय है। मुझे भी वह अपनी सहानुभूति देते रुके नही। सफल हूँ तो, असफल हूँ तो, उनकी सहानुभूति मुझे चाहिये ही। क्यों कि मैं जानता हूँ, मै क्या हूँ।

पहाड़ी धीरज, दिल्ली।
१९—१०—२९

—जैनेन्द्रकुमार

लो

मेरी कट्टो,

तुमने कुछ नहीं लिया,—यह तो ले लो। यह तुम्हारे ही लिये है। देखो, इंकार न करो, टालो मत। अपनेको तुमने विधवा ही रक्खा, इसको सधवा बना दो। अपने चरणोंमें आने दो। मेरी पूजाको तुमने स्वीकार न किया तो वह तुम्हारे ही चारों ओर मँडराती रहेगी। जबतक चाँद और सूरज हैं,—तबतक यह अस्वीकृत, तिरस्कृत, विधवापूजा, बिना चैन, तुम्हारी ही स्मृतिके चारों ओर भटकती फिरेगी।—तब मेरा क्या हाल होगा? कट्टो मेरी, इंकार न करो, इसे ले लो, और मुझे शापसे बचाओ।

—जैनेन्द्र

परख

१

वकालत पास तो की, पर शुरू न की। इसके दो कारण हुए। बी० ए० पास करनेके बाद टाल्स्टाय, रस्किन, गाँधी, या न जाने किसका एक विचार-स्फुलिंग इनके जवानीके तेज़ खूनमे पड़ गया था। उस वक्त तो सामने एल-एल्० बी० की पढाई आ गई, और उसे पढ़ने और पास करनेकी फ़िक्रमे लग जाना पड़ा, इससे कोई ख़ास फल दिखाई न दिया। पर वकालतका इम्तहान देकर, शहरके कोलाहल और व्यस्ततासे दूर अपने गाँवमे जब आये, और जीवन-क्षेत्रमे क़दम रखनेकी बाते सोचने लगे, तो वह स्फुलिंग भी चेता। अबतक भीतर-ही-भीतर वह इनके खूनमें अपना ज़हर काफ़ी फैलाता रहा था। वक़्त आया तो अपनी गर्मीसे इन्हे दहका दिया। सोचा—वकालतमे क्या है, अपने देशका सत्यानाश है, और अपनी आत्माका सत्यानाश है।

एक दूसरी बात और हो गई जिसने इनके इस विचारपर मोहरका काम दिया।

गाँवमें इनकी थोड़ी ज़मींदारी थी, प्रतिष्ठा भी थी। इनकी सहृदयतासे भी आस-पासके लोग परिचित थे। अपने जीकी सुनाने इनके पास आ जाया करते थे। एक रोज़ इन्होंने ऐसी बात सुनी कि यह तैशमे आ गये और इन्हें एक जोखमका कर्तव्य सामने दिखाई देने लगा।

मुंशी होशियार बहादुर ज़िलेके नामी-गिरामी वकील थे। आमदनी खूब थी, दबदबा भी खूब था। एक मवक्किलने आकर इनकी बदनीयतीका हाल सुनाया।

फ़ौजदारीका मुक़द्दमा था। मवक्किल बड़ी आफ़तमे था। मुंशीजीने आस बँधाई, ढाढस दिलाया और मेहनताना कस कर लिया। पीछे कहीं याद न रहे, इससे मेहनताना पेशगी ही दे देना अच्छा होता है। कुलका कुल पेशगी दे दिया गया।

पर वकील साहब तारीख़पर ग़ैर हाज़िर थे। तारीखे दो बदलीं, तीन बदलीं, पर वकील साहबको किसीपर मौजूद होनेकी फ़ुर्सत न मिल सकी। आख़िर एक तारीख और दी गई। अबके वकील साहब ज़रूर पहुँचते; पर क्या किया जाय एक पार्टी आ गई। पार्टीमे शरीक न हों तो कैसे हो!

वह तो ख़ैर हुई कि मवक्किलने न जाने क्या सोचकर एक और वकील कर लिया था, नहीं तो न जाने क्या होता।

जब मवक्किल गिड़गिडाता वकील साहबकी कोठीपर पहुँचा, तो उसे निकलवा दिया गया। कुछ कहा गया तो जवाब दिया गया—रुपये!—अगर बन सके तो वसूल कर ले।

पर वसूल कैसे कर ले? मगरसे बैर कर तो जलमेंसे वसूल किये नहीं जा सकते। और इस तरह जब अदालतकी ही राह बंद हो, तो ग़रीब बेचारा क्या करे?

सुनकर इन हमारे महाशयने निश्चय किया, वकील साहब होशियार बहादुरको सबक़ सिखायेंगे।

कुछ रोज़ बाद, कामसे, ज़िलेके शहरमे जाना हुआ। मुंशी होशियार बहादुर बार-रूममें, आराम-कुर्सीपर पड़े, गप लड़ा रहे थे। वकील उन्हें घेरे बैठे थे।

सत्यधन घुसे। (हमारे महाशयने आदर्शकी झोंकमे अपना नाम सत्यधन रख छोड़ा है।) पैरोमे धूलसे भरा चरमराता हुआ देशी जूता; मोटा टुकड़ीका कुर्ता; सरपर मटमैलीसी बेढंगी टोपी।

वकीलोंने सिर उठाया।—कैसा बेहूदा-सा आदमी है!

होशियार बहादुरको पहचानता तो सत्यधन था ही। सीधे फटकार बतानी शुरू की। जब आदमी अँग्रेज़ी बोल रहा है, और निपट गँवार भेपमे है,—तब किसकी हिम्मत हो कि न अचकचाये। बातके अतिरिक्त, ऐसी हालतमे, और कुछ उपाय हाथमे लेनेकी सूझ ही नहीं सकती। सत्यधनका भरा गुस्सा चुक चुकनेपर होशियार बहादुरने कहा—'आप क्या है?'

सत्यधनने तनकर कहा—'मैं भी वकालत पास कर चुका हूँ—'

सत्यधनकी आदर्श-भक्तिमें शायद वकालत पास होनेके अहंकारको स्थान था।

होशियार बहादुरने मिठाससे कहा—'ओ-हो, तो आप मेरे नज़दीकी हैं। तैशमें न आँय, यह पेशा ऐसा ही है।'

—'अपना कुसूर पेशेपर मत टालिए।'

—'ओ-हो! तो आप ईमानदार वकील बनेगे! तब तो म्यूज़ियम-के लायक होगे आप। क्यों कि अभी तक ऐसा जानवर देखा नहीं गया।'

सत्यधनका गुस्सा उबल रहा था और बल खा रहा था।

—'मै कहता हूँ....'

—'देखो, साहब, यह कहते है.... '

'मैं कहता हूँ ... ' बात झपटकर सत्यधनने कहा।

छँटे वकीलने उड़ाते हुए कह दिया—'कहते हो अपना सिर, और क्या कहते हो!'

—'मै कहता हूँ, सच .. '

—'....से वकीलको ताल्लुक नहीं। तुम अभी जानते नहीं, बच्चे हो। या तो युधिष्ठिर ही बन लो, या वकील ही बन लो। सच बोलनेकी कहते हो तो झूठ कहते हो।'

झूठ! ऐसा शब्द सत्यधनके खिलाफ़! उसने एक ही झटकेमे, बिना अटके कह दिया—

"झूठके बिना वकालत नहीं, तो मै वकालत करता ही नहीं। जाओ। मैं क़स ...।"

—"बस काफ़ी है। यह ठीक है।"

इतने बहुतसे लोगोमे की हुई प्रतिज्ञा उनके सिरपर पड़ गई। तब अपने आदर्शके चिंतनकी धुनमे किये हुए कोरे-विचार अपने-आप निश्चयका रूप धरने लगे और इस प्रतिज्ञाकी ज़बरदस्तीकी मुहर लगवा कर बाज़ारमे आने लगे।

वकालत न करनेकी बात जब टकसाली होकर बाज़ारमे यों फैल गई, तो अब क्या किया जाय ? पढ़े-लिखे, पेटके प्रश्नकी ओर-से थोड़े-बहुत निश्चिन्त, इस युवकके लिए बस अब एक काम रह गया—'आदर्श-आराधन।'

तन-मनसे यह आराधना उन्होंने आरंभ की। सोचनेका अपने पीछे व्यसन लगाया, उसके नशेमे अपनेको भूल जानेकी क्षमता भी पैदा की।

कुछ पागल बनना भी शुरू किया। जैसे:—

एक रोज़ बेकनकी किताब पढ़ रहे थे। पढ़ते-पढ़ते रुके। जैसे विचार-धाराको कहीं कुछ झटका लगा, और उसका उलझा और रुका हुआ प्रवाह खुलकर बह चला। थोड़ी देर बाद मानों फिर वह एक रोकपर आगया। तब किताबका वह पन्ना उन्होने फाड़ लिया।

फिर तो उस पन्नेपर काफ़ी दिक्कत उठाई गई। ढूँढ-ढाँढकर एक सफ़ेद काग़ज निकाला, नापकर उसके बराबर काटा, ज्यों-त्यों कर कहींसे लेही लाये, और उसे फटे पन्नेपर चिपकाया। और उसपर सुंदर-सुदर अक्षरोंमे लिखा,—

" यह दुनिया एक है। अनेकों—ऐसी-ऐसी असंख्य—दुनियाओं-मेंसे एक है। मैं उसपरका एक नगण्य बिंदु हूँ,—फिर अहंकार कैसा ?

" यह काल कबसे चला आ रहा है—कुछ आदि नहीं। कबतक चला जायगा—कुछ अन्त नहीं। इस अनादि-अनंत कालसागरके विस्तारमें मेरे सादि-सात जीवन-बुदबुदेकी भी क्या कुछ गणना है! इन ५०–६०–१०० सालोंकी भी कुछ गिनती है!....फिर भी जीवनका मोह!—छि:

" इन ५०—६०—१०० सालोंकी, और मेरे अस्तित्वके इस नगण्य बिंदुकी क्या उपयोगिता है ? ..इस बे-ओर-छोरके ब्रह्मांडकी स्कीममे इस मेरे तुच्छ ' अहं ' की क्या सार्थकता है ? "

इसके नीचे तनिक मोटे अक्षरोंमे लिखा—

" अपना सब-कुछ मिटाकर इस स्कीममे विलय हो जाना— जिससे मेरे जैसे और बुदबुदोंको अवकाश मिले। धरतीमें गडकर, धरतीके तल (Level) को ज़रा ऊँचा कर जाना। भविष्यकी पुष्टिके लिये अपने जीवन और वर्तमानको स्वाहा कर जाना। "

लिखकर उसे फिर पढ़ा—फिर पढ़ा। जितना ही पढ़ते उतना ही उन्हे उसका स्वाद आता। यह लिखनेके लिये मानों वह अपनेको मन-ही-मन धन्यवाद देना चाहते थे।

२

सत्यधनके माँ ही माँ है। पिता नहीं है, न और ही कोई सगा है। बहन है बड़ी, जो बालबच्चे-दार है। इस तरह वह लगभग सब ओरोंके उत्तरदायित्वसे निश्चिन्त है। शादी उसकी नहीं हुई। रिश्ते तो बहुत-से आये, पर शेक्सपियरकी नायिका बनने योग्य उनमे कोई न थी, इससे स्वीकार नहीं किये गये। इस तरह बी० ए० भी हो गया, एल-एल० बी० भी गुज़र गया, और अब यह आदर्श-क्रांतिका ज़माना आ गया।

अबतक सजधज, ठाट-बाट और प्रतिष्ठाके एवरेस्टपर पहुँचे हुए असाधारण जीवनके स्वप्न देखते थे, अब सोचने लगे, फटे-टूटे, मैले-बेहाल, हीन, अपरिचित, अज्ञात और साधारण रह कर ही जीवनकी क्यों न पूरी तुष्टि प्राप्त कर ली जाय। अब उन्होंने अपने मार्गके किनारे खड़े 'पोस्टों' पर से 'उन्नति' मिटाया, और 'उत्सर्ग' लिख लिया। अब शेक्सपीयरकी नायिकाकी जगह किसी सकुचाई-सी गँवई किशोरिकाको घरमे ले आकर प्रतिष्ठित करना ज्यादे प्रिय लगने लगा। जो अभी जीवनके साथ शिक्षाकी और सभ्यताकी बहुत सी व्यर्थताएँ लपेटना न सीखी हो, जो सीधी-सादी, सच्ची भोली तिरस्कृता हो, जिसे इनकी आवश्यकता हो और जिसे सुखी बनाकर यह भी समझें 'हाँ, मैने कुछ किया'। जिसे कुलका और पैसेका दर्प न हो, और जो अपने पतिदेवमें अपना सारा दर्प और गौरव केन्द्रित कर उनकी पूजा कर सके।

विवाहसम्बन्धी विचार जब यह रुख पकड़ रहे थे, तभी एक लड़की, अजीब ढंगसे, इनके जीवनमें, अनजानमे ही, हिल-मिल जा रही थी।

यह लड़की इनके ही गाँवकी है। पड़ौसमे ही घर है। गाँवका पड़ौस शहरके पड़ौस जैसा तो होता नहीं, इस लिये वह मानो इनके घर-की-ही जैसी है।

जबसे इन्होने होश सँभाला है, तभीसे वह इनके सामने आती रही है। इनकी आँखोके सामने वह नन्ही-सी बच्चीसे अब चौदह बरसकी हो गई है। दिन थे, कभी इसे गोदी खिलाया था, बड़े चावसे थपका थपका कर उसे सुलाते थे। फिर दिन आये, वह खेलने खिलाने और चिढ़ाने मनानेके लायक हो गई। तब उसके साथ यह कौतुक भी सब किया।

इसी बीच एक दुर्घटना हो गई। उससे इनके इस खेलने-खिलानेके रससे भरे संयुक्त-जीवनका अंत ही हो गया होता। पर कहिये विधिका विधान ही उलटा पड़ा, या कहे कि अनुकूल पडा! क्योंकि चौथे वर्षमें उसका विवाह हो गया और पाँच वर्षकी होते-न-होते वह विधवा हो गई!

जब विधवा हो गई तो यह तो कैसे होता कि आठवीं क्लासमें पढनेवाले छात्रको पता न चलता। पता तो चला, पर यह 'विधवा'-विशेषण उन दोनोके बीचमे आकर खड़ा न हो सका। भला उस एक जरासी घटनासे उन दोनोको क्या मतलब जो एक दिन गाजे-बाजे और लड्डू-पूरियोकी ज्यौनारके साथ संपन्न कर दी गई थी? और न इन्हें एक दूर-दराज़के श्रीमंत वृद्धके मर जानेसे ही कोई खास सम्बन्ध जान पड़ा। इस लिये इन दोनोंकी दुनिया तो ज्यों-की-त्यों बनी रही। उल्टे इस विधवा शब्दके विशेषणने दोनोंको और निकट ला दिया।

सर्कारी स्कूलके दशम श्रेणीके यह छात्र-महाशय जब पार न पाते, तो लड़कीसे कहते—'ओ, हो, विधवाजी! ....'

इसपर ७ बरसकी उस लड़कीका चेहरा एकदम फुट-भर लम्बा और मन-भर भारी हो जाता।

इस कौतुकके लिये 'विधवाजी' का शब्दार्थ समझनेकी क्या आवश्यकता थी? क्या यह काफी नही था कि वह उसे चिढानेके लिये कहा जा रहा है? और कभी-कभी रूठना क्या स्त्रीत्वका तकाजा नहीं है?

इस तरह उस विधवा-शब्दने उन्हे रूठने-रुठाने और मनने-मनानेके बहुत-से अवसर देकर उन्हे एक-दूसरेके और निकट ला दिया।

किंतु कालिजसे अब वह दसवीं क्लासका लड़का बहुत होशियार बन आया है। वकील बन आया है, और वकीलके ऊपर अब फिला-स्फर बन गया है। अब वह भूलकर भी विधवा शब्द, मुँहमे तो क्या, दिमागमे भी नहीं आने देता।—किंतु इससे क्या?

पर जैसे जीवनके पहले रोजसे हम हवाको अपने लिये आवश्यक और सहज-प्राप्य रूपमें स्वीकार कर लेते है और उस ओर विशेष ध्यान नहीं देते, ऐसे ही वह भी लड़कीके बारेमे विशेष ध्यान नहीं देते थे। पर इससे क्या?

हर-साल कालिजकी गर्मीकी छुट्टियोंमे यह लड़कीको पढाया करते थे। कोर्स खतम करनेके बादकी इन छुट्टियोंमे और उन छुट्टियोमे लडकी कोई अंतर न देख सकी। वह पढ़ने आने लगी। पर यह छुट्टियाँ कब और कैसे खतम की जायेगी?

पढ़नेका काम आरंभ तो कभीका हुआ, पर बढ़ अभी जरा ही पाया है। बात यह है, सालभर यह सिलसिला टूटा पड़ा रहता है, और फिर इन छुट्टियोंमे ही जुड़ता है। गाँवमे वह पढ़े और किससे, और अपने आप तो पढ़ती रहे कैसे? पर इससे उत्साह तोड़नेका नाम न मास्टर साहब लेते हैं और न लड़की।

क्या यह उत्साह प्रशंसनीय नहीं है?

३

आइये पढ़ना देखे।

लड़की तन-मनसे पढ़ रही है, पर मास्टरजी तन-मनसे नहीं पढ़ा रहे हैं। वह न जाने क्या देखते है, और फिर क्या सोचते है।

लड़की अपनी सुलेखकी कापीमे बना-बनाकर लिखनेमे लगी थी कि उसकी इंग्लिश रीडर इन्होने उठा ली। जो पाठ आज पढाना था, उस सफेपर, निगाह जमाते-जमाते लिखना शुरू कर दिया। छपी लाइनोंके बीच-बीचमे मोती-से अक्षरोमे लिखा—

"हमारी कट्टो पढती है। लोग कहते है, वह विधवा है। हम कहते है, वह कट्टो है और दुनियाभरसे अच्छी है।

"एक रोज़ हम चले जायेगे। वह रह जायगी। फिर वह भी चली जायगी। दुनिया रह जायगी। वाह!—यह तो बड़ी बुरी बात होगी।"

आखिर कट्टोका लिखना खतम हुआ और अब पढ़नेका समय आया।

किताब तो गुरुजीने दुबका ली थी। उन्होंने कुसूर जो किया था। किताब भी कुछ ऊट-पटाँग लिखनेकी चीज है। कट्टोने अपने चारों तरफ़ किताब देख ली, पर न मिली।

गुरुजीने पूछा—क्या है?

उत्तर मिला—हमारी रीडर!

—"क्या हमने ले ली?"

—" कहाँ गई ? "

—" देखो । "

कट्टोने फिर देखना शुरू किया । हार हूरकर आ खड़ी हुई—

" देख तो ली । "

" कोई फ़रिश्ते थोड़े ही ले जायेंगे !— फिर देखो।"—गुरुजीने कहा और किताब कोटकी तहमे सरका ली ।

काफ़ी ढूँढ़-ढाँढ़के बाद कट्टोने कहा—

" कोई सुई है !—कितनी तो देख ली !

" अच्छा, हम साथ-साथ चलते है,—अब देखो । "

बहुत-कुछ देखा तो उसी कमरेके एक कौनेमे औधी पड़ी हुई वह किताब मिल गई ।

—" कहीं तो पटक देती हो,—फिर कहती हो कहाँ चली गई ? "

—" मैने तो सँभालके रक्खी थी । "

—" बड़ी अच्छी रखी थी ! अच्छा, अब सबक़ शुरू करो ।"

सबक़ शुरू हुआ । वही पन्ना खुला,—

" है ! ये क्या कर दिया ! किन्ने कर दिया ? "

" देखे ! " मास्टर साहबने किताब लेकर बड़े गौरसे देखी । कहा—
" कोई बड़ा पागल आदमी है !....यह तुम्हारा ही खेल तो नहीं है ?...."

—" मैं सच कहती हूँ—मैने नहीं किया । "

—" सच तो बहुत कहती हो ! ...फिर कौन कर गया ? "

—" तुमने करा होगा । "

—" मैंने ?–हरे, राम-राम ! "

किंतु इस तीव्र विस्मय-बोधकसे लड़कीका संदेह और पुष्ट ही हुआ। पूँछा—

" नहीं तो किसे ? "

" मैंने ? देखो, मै तुम्हारे सामने ही तो बैठा रहा हूँ। "

" हाँ—हाँ ! चुपचाप किताब उठा ली होगी। "

" हरे-हरे ! मै कोई बेवकूफ़ हूँ ! "

" हम नहीं जानते। हम तो नहीं पढ़ते। हमे दूसरी किताब लाके दो। "

" कौन लाके दे ? "

" तुम। "

" क्यो ? "

" हम नहीं जानते। "

" तो हम भी नही जानते। "

" हम तो नहीं... "

" तो हम भी नहीं ... "

" नहीं लाके देनेके ? "

" नहीं लाके देनेके। "

" तो हम नहीं पढ़ते। "

" मत पढ़ो। "

इसपर १४ बरसकी वह विधवा कट्टो बिना ज़रा देर लगाये उस किताबको उठाकर, और सब बस्ता वहीं-का-वहीं छोड़कर चलती बनी

"ओ, पगली ! कट्टो !....सुन तो ! "

उसने सुना। लेकिन वह बढ़ती ही रही। आँखोंसे ओझल न हो गई, तब तक बढ़ती गई। फिर दूसरे कमरेमें आकर खड़ी हो गई।

" अरी, ओ, पागल कहींकी !—सुन !"

कट्टो चुप।

मास्टरजीको पूर्ण विश्वास था, कट्टो जायगी नहीं, आ जायगी, इसीसे दो-तीन-चार आवाज़ें दीं। कट्टो सबको पी गई—और दुबकी-दुबकी चुप खड़ी रही।

इसपर मास्टर-साहब धड़धड़ाते हुए आये और सीधे बड़े दर्वाजे-पर पहुँचे। बाहर सड़कपर देखा—कट्टो न थी। वह वहीं खड़े रह गये—कुछ सोचते रह गये। दो-तीन मिनट बाद कहा—'वाह !' और लौट आये।

इधर कट्टो मास्टरसाहबके बाहर होते ही अपने क्लास-रूममे दाखल हो गई थी। और आते ही भली विद्यार्थिनीकी भाँति सबक़के मुश्किल शब्द किताबमेंसे कापीमे नक़ल करने लगी थी।

मास्टरजी आये। आते ही कहा—" कौन ?—कट्टो !"

उसने कापीमेंसे मुँह नहीं उठाया।

" बडी शैतान हो तुम !"

कट्टोको जैसे कापीमे शब्द लिखनेके सिवा दुनियामे किसीसे मतलब ही नहीं।

" और ऐसी छिप कहाँ गई थीं ?"

कट्टोने ऊपरको देखा। जैसे उसकी आँखोंमें चुनौती भरी थी—'कोई हमे हरा सकता है ?' उसने कहा—

" तो नहीं लाके दोगे नई किताब ?"

" क्यों नहीं लाके दूँगा।"

इसपर वह सब कुछ भूल-भालकर, मास्टरसाहबके मुँहके सामने एक बार मुँह बिचकाकर, खिलखिलाकर हँसने लगी।

मास्टरजीने कहा—" तो यह किताब तो मुझे दे दो।"

लड़कीने पूछा—" तो इसमें य' तुम्हींने लिखा था न ?"

मास्टरजी पकड़े गये, बोले—" हाँ।"

लड़कीने कहा—" तो हम नहीं देते यह तुम्हे !"

—" तुम इसका क्या करोगी ?"

—" कुछ भी करे !"

—" आख़िर क्या ?"

—" फाड़ दूँगी !"

—" अरे, नहीं-नहीं !"

किताबको दोनों हाथोमें पकड़कर लड़कीने कहा—

" देखो, यह फाड़ी, यह !....फाड़ूँ ?"

" नही-नहीं-नहीं ! ...

" फाडती हूँ !"

" नहीं, देखो, नहीं !"

लड़कीने देखा, मास्टरसाहबसे यह नहीं होता कि उससे किताब छीन ले। यही तो वह चाहती है। उसने कहा—" मैं तो फाड़ती हूँ।"

मास्टरजीने देखा, लड़कीके हाथ, जैसे सचमुच, किताबके साथ ज़ोर कर रहे है ! वह उसकी तरफ़ झपटे। लड़की चौकन्नी थी—पलक मारतेमे फुदक दूर जा खड़ी हुई।

—" वाह ! ऐसे झपटे, फिर भी कुछ नहीं ! ...देखो, यह फटी; यह !"

मास्टरजीने कहा—" तुम्हारे हाथ जोड़ूँ, फाड़ो मत !"

लड़कीने कहा—" अच्छा जोड़ो हाथ । "

मास्टरजीने हाथ जोड़ दिये ।

बालिकाने अपने दोनो हाथोसे उन जुड़े हुए हाथोंको पकड़ लिया । किताब देते हुए कहा—'लो' । फिर कहा—

" अच्छा, अब सबक़ पढ़ाओ । "

मास्टरजी चुपचाप सबक़ पढाने लगे ।

४

जब पढ़ाई ऐसी हो, तो जीमें खलबली मचे कैसे नहीं ? मास्टरजीको जीवनमें थोडा मिठास आने लगा।

समझते थे हम एक थिरतापर आ गये हैं। विचारों और धारणाओंको पीट-पीटकर मज़बूत करके, उनके ऊपर बैठकर सोचने लगे थे, अब डिगेगे नहीं। जैसे जीवन भी सरल-रेखाओसे बनी हुई कोई ज्यामितिकी शक्ल है, जिसे नाप-तोल कर निश्चित कर लिया जाय !

पर यह क्या हो गया ! पल भरमे यह कैसी गड़बड़ मच गई ! अब तक तो कुछ न था। अपने उस चबूतरेपर बैठ कर जीवनको और संसारको पढने और सुलझाते रहनेमे कोई मुश्किल नहीं जान पड़ी। पर जैसे अब सारा ससार, और वह, और वह उनका चबूतरा,—सब एक झूलनेमें झूलने लग गया। एक लहर उठी और उनके सारे अस्तित्वको डुबाने उतराने लगी। सब कुछ मिट-मिटाकर सावनके इन्द्र-धनुपके रगोंमे लय हो गया—और उन विरगे रगोंमे झाँक-झाँक कर देखती हुई दीखने लगी वह कट्टो !—यह कट्टोकी क्या माया थी ?

जरा-सी कंकडीने आकर सोये-हुए विशाल जल तलकी स्थिरता भग कर दी ! हलकी-सी हवाका झोका जैसे जब जल-तलको थपकता हुआ निकल जाता है, तो उस सारे तलमे एक सिहरन-सी होती है, उसमे कँपकपी उठ जाती है। वैसे ही किसी अज्ञात आवेगके मीठे झोकेने उनके सोये जीवनके तलपर एक सिहरन-सी फैला दी। कटोरेको जैसे किसीने बाहरसे छू दिया, और उसके भीतरका पानी यहाँसे वहाँ तक काँप गया !

जीवनकी गहराईमेंसे जो लहर उठी है, उसको मनुष्यके बनाये हुए धारणा-संकल्पोके रेतके किनारे कहाँतक रोक सकते हैं ?

—कट्टो !
—कट्टो गिलहरीको कहते हैं।

[पृ० १७

५

थोड़ा कट्टोका बखान करे।

वह ४ वर्षकी विधवा है। गरीब माँ-बाप की है। बाप है नहीं, माँ ही माँ है। वह माँके ऊपर बड़ा बोझा है, और माँ, नियमसे, दिनमे कई बार यह सत्य पड़ोसियोंपर और अपनी उस लड़कीपर प्रकट कर देती है। कुछ और सगे भी है, पर वे हर वक्तके लिये नहीं।

उसका नाम? हमारे मास्टर-साहबने उसका नाम कट्टो रक्खा है। लड़की बुरा माने तो माने, हमारे लिये यही नाम यथेष्ट है। और यह नाम बिलकुल निरर्थक नहीं है। मास्टरजीने रक्खा तो बहुत समझ-बूझकर नहीं है, पर बहुत उपयुक्त है। कट्टो गिलहरीको कहते है। उसकी ठोड़ी गिलहरीके मुँह जैसी है, वैसी ही नोकदार। उसके चेहरेसे भी वही गिलहरीका भाव टपकता है। झटपट–झटपट, यहाँ-दौड़ वहाँ-दौड़, इधर देख–उधर देख,—ये सब भाव उसमे है। गिलहरी जब किसी गोल मटरको लेकर, पिछलो पैरोपर उचकी बैठकर, अगले दोनों हाथोसे मुँहमे दस बार देकर खाती है और आपको ताकती रहती है—तो कैसी सुंदर लगती है! ऐसी ही वह है। और जैसे कट्टो ज़रा चुटकी बजाओ तो चट दरख़्तकी छतपर पहुँच जाती है, ऐसे ही मिनट-भरमे यह कट्टो कहाँ भाग जायगी, कुछ पता नहीं।

पर, जगत्‌का वैषम्य देखो। एकके तो ये भाव दुनियाको खुश करते और प्यारे लगते है, और दूसरीके लिये ये ही उसके पाप है। इस लड़कीकी इन बातोंको देखकर लोग बड़े कुढ़ते है, और उसे गालियाँ देते है।

लोग कहते हैं,—वह विधवा है, कम्बख्त ! लड़की जान गई है, वह विधवा है, कम्बख्त भी हो। लेकिन फिर हँसने-खेलने, भागने-कूदनेका अधिकार वह क्यों नहीं रखती—यह वह नहीं समझ पाती।

बालिका सुंदर नहीं है। उसके ओंठ ज़रा ज्यादे ताज़े और ज्यादे खुले हैं, और जैसे फैलते-फैलते यकायक रुक गये है। चेहरेके एक-एक अंगमे और भी दोष निकाले जा सकते हैं। पर वह इन सबसे निश्चित है, और समझती है, वह असुंदर नहीं है। रंग उतना गोरा नहीं, जितना काला है।

लेकिन आँखे ? न जाने उनमे क्या है ! वह एक क्षण कहीं टिक कर ठैरती नहीं। यहाँ-वहाँ, यहाँ-वहाँ फिरती रहती है। लेकिन जहाँ ठैरती है, तो जैसे उसके भीतर तक चली जाती हैं। उन आँखोंमे न जाने कैसा औत्सुक्य और न जाने क्या है कि माढ्म पड़ती हैं जैसे उनकी पुतलियाँ बाहर आजाना चाहती है। और जब पलके उनपर झुकती है तो यह चमक एक पतली-सी रेखामे आ इकट्ठी होती है, और वहाँ जैसे आर्द्रता फैल जाती है।

वे आँखे उसकी बड़ी कुतूहल-पूर्ण और बड़ी हिंसा-मय है। उसके कुतूहलमे जैसे हिंसा है, और हिंसामे सिवा कौतूहलके कुछ नहीं है। वे आँखे कहती हैं, जैसे वे सब कुछ जानती हैं—फिर भी अबोध हैं। उनके लिये कुछ भी वर्ज्य नहीं है।

इन आँखोंसे ही कह सकते हो वह सुंदर नहीं है, और इनके कारण ही कहा जा सकता है कि वह अत्यंत सुंदर है। जैसे मानो स्त्रीत्वको कूटकर और उसे छानकर इन आँखोंमे भरा गया है।

६

मास्टर साहब सोचमे हैं। सोचते है,—यह जो एक नया मीठा-सा उद्वेग उठा है और जो मुझे ललचाना चाहता है, मै उसे महला-बहला कर पोसना शुरू कर दूँ तो परिणाम अनिष्टकर हो सकता है।

तभी बस्ता लेकर कट्टो आ पहुँची।

—" कट्टो, आज पढ़ना नहीं होगा। आजसे...."

कट्टोका झट-से एक हाथ मास्टर-साहबके माथेपर जा पहुँचा। यह हाथ थर्मामीटर है।

—" क्यों, कैसी तबीयत है ? "

यह मन क्यों खिसकने लगा ? यह बुरी बात है, बोले—" तबीयत ठीक है। पर आजसे. .."

कट्टो मास्टरजीके ऊपर छोटी-मोटी डाक्टरनी बन बैठी है। हाथ रखनेने बतला दिया, तबीयत सचमुच ठीक ही है। शारीरिक कोई शिकायत है नहीं। बाक़ी जो कुछ होगा सो वह खुद देख ही लेगी। बोली—

" आज वह Fisherman वाला सबक़ है। Seashore मायने क्या, और—और Billows.... "

—" Seashore–किनारा। Billows–लहर। पर कट्टो, मुझे काम है, मैं जा रहा हूँ।"

—" अच्छा जाना, मायने लिखा जाओ।"

—" नहीं...."

—" नहीं कैसी ? "

ऐसे ज़ोर-जब्रका उल्लंघन कैसे हो ? पढ़नेवाला जब पढके ही छोड़ेगा तो पढ़ानेवाला क्या करे ? फिर भी ज़ोर तो लगाना ही चाहिये। बोले—

" ऐसी कोई तुम्हारी ज़बर्दस्ती है ? "

—" जबर्दस्ती नहीं तो यों ही ! "

कह तो गई, पर ऐसी बड़ी बात कहकर ख्याल उसे ज़रूर हुआ। भला पूछो, इसकी ज़बर्दस्ती कैसी ? उसने भी सोचा—' भला मेरी जबर्दस्ती कैसी ? '

उसने अपनी उन——उन्हीं भेदीली आँखोसे ऊपर देखा। उन आँखोंमें कातर-भावसे लिखा था——'मानों, तबतक ही जबर्दस्ती है, नहीं तो मै कौन हूँ ! '

मास्टरजीने देखा। कैसी ये आँखे है ! सोचा, उन्हींको पाकर तो वह ऐसी बड़ी बात कह रही है। उसकी बात उन्हींपर आ पड़ी है। मानें तो, नहीं माने तो,—उन्हींके हाथ है। वही जज हैं, अभियोगकी फ़रियाद और कहीं नहीं जायगी, उन्हींके पास आयगी।——फिर वह अभियोगमे हाथ कैसे डाले ? बालाने अपनी बात कहकर उसकी रक्षाका सारा भार उनके ऊपर डाल दिया, अब वह बड़े असमंजसमे पड़ गये। इस सिलसिलेको तोड़ना तो है ही, पर क्या इस तरह ? उनके आसरे जो ज़रा-सी बात कह डाली गई है, उसकी रक्षासे विमुख होकर ?—नहीं। उन्होंने कहा——" अच्छा, आज पढ़ लो। कलसे...."

बात जब यों झटपट मान ली गई तो कट्टो समझ गई, यह कोरा मान-मनौवलका तमाशा नहीं है। वह मास्टर साहबको खूब जानती है। मास्टरजीको देखकर और बातके ढंगको देखकर उसे रंचमात्र संशय नहीं रहा कि कल पढ़ाई नहीं होगी। आजका दिन उसकी पढ़ाईका,

उसकी ज़बर्दस्तीका और उसके राज्यका अंतिम दिन है। उसका उत्साह बुझ गया। बड़े कडवेपनके साथ बोली—

" ओह, मै क्या कह गई ? मैं कौन हूँ, जो मेरी ज़बर्दस्ती हो ! "

इस अप्रिय बातको सक्षिप्त करनेके लिये मास्टरजीने कहा—

" अच्छा, पढो—पढ़ो। "

पढाई हुई। पर बिल्कुल सूखी। वृंत-च्युत फूलकी तरह इसका मन टूटकर धूलमें लोट रहा है। मशीनकी तरह, किताबमें आँख गाड़े वह पढ रही है,—पर क्या खाक-धूल पढ रही है, सो कौन जाने।

मास्टरजीका मन भी जैसे मिचला रहा है। जैसे रो उठनेकी तैयारीमे हो।

—" कट्टो, अब जाना भी तो होगा। "

—" जाना होगा ?—कहाँ ?—क्या छुट्टियाँ ख़तम हो गई ? "

छुट्टियाँ ख़तम नहीं हो गई; ख़तम की जा रही है। और इस तरहसे कि वो अब लौटे ही नहीं। पर कट्टोसे यह सब समझाकर कैसे कहा जाय ?

—" हाँ, छुट्टियाँ भी तो ख़तम होंगी ही। "

—" पर अबके बड़ी जल्दी ! "

—" हाँ "

यह बारीक-सा ' हाँ ' सुनकर कट्टोने कहा—

" यह क्या बात है ?—छुट्टियाँ ख़तम हो गई हैं तो जाओ। ऐसे क्यो होते हो ? "

सँभलनेका यत्न करके कहा—

" कहाँ !— कैसा भी तो नहीं हो रहा ! "

—" तो कब जाओगे ?—कल ? "

कल ही चल देना पड़ेगा, सो तो कभी न सोचा था। पर अब देखा, नहीं भी कैसे करें। बोले—" हाँ "।

—" किस वक़्त ? सवेरे या शामको ? "

—" तीसरे पहर। "

—" अच्छा, मै जबतक न आऊँ तबतक मत जाना। कहो, नहीं। "

—" नहीं। "

कट्टो फिर चली गई और मास्टर साहब पड़ गये। कट्टोका ध्यान आने लगा। सोचते-सोचते, प्रेम तो क्या कहे, पर कट्टोपर, रह-रहकर करुणा उठ आती थी। वह कैसे अपने वर्तमानमे मग्न है, जब कि भविष्य शून्य, निर्जन और अँधेरा है। जब इस भविष्यमें कट्टो पहुँचेगी, तो उसका क्या हाल होगा ? पर, देखो, कैसी लड़की है, इसकी चिंता भी उसे छू नहीं गई। क्या कुछ हो सकता है कि यह भविष्य उलट जाय। क्या वह जीवनके अंतिम दिन तक इसी तरह उनसे पढ़ने आती नहीं रह सकती ? उसकी ख़ातिर, वह ख़ुद इसी तरहके बिन ब्याहे मास्टर बने रह सके तो कैसा ? लेकिन ...लेकिन कल तो जाना है !

क्यो जाना है ? नहीं जाना। नहीं जाते। होने दो जो हो, भागकर क्यों जायँ ?

तभी डाकिया डाक दे गया। बिहारीकी भी चिट्ठी आयी। वह फ़ेल हो गया। उसके बाबूजी परिवारके साथ कश्मीर जा रहे है। बहुत ज़ोर दे रहे है—तुम चलो। चलना पड़ेगा। टाल नहीं सकोगे। टालोगे तो क़सम। गरिमाका भारी अनुरोध है। क्या उसकी भी रक्षा नहीं करोगे ? अमुक दिन जा रहे है, उससे पहिले ही मिल जाओ।

यह चिट्ठी इसी वक़्त क्यो आकर पहुँची ? क्या भाग्यके इशारे पर ?—ऐसा है तो यही सही। ..लो, कट्टो, मै सचमुच चलता हूँ।

बिहारीको चिट्ठी लिख दी गई। अगले दिन सवेरा हुआ, दो पहर भी टल गयी, चल देनेका वक्त अब हुआ ही चाहता है,—पर कट्टो नहीं आई ! भीतर-ही-भीतर उत्कण्ठासे प्रतीक्षा कर रहे थे,—न आई तो जी मसोसने लगा। लेकिन सोचा, मुझसे तो पक्की वही है, फिर मैं ही क्यों कच्चा बना रहूँ ? एक शरारत सूझी। आये-न-आये, वक्तसे थोडा पहिले ही चल दो।

इधर कट्टोको बहुत-सा काम करना था। पहिले तो बहुत-सा रोना था, क्यों कि भीतरसे जीको ऐठता-हुआ जो क्षोभ उठा है, उसे बहाये बिना वह और कुछ भी नहीं कर सकती। फिर एक तकिया बनाना था। अबके एक तकिया बनाकर मास्टर साहबको देगी। काम छोटा-मोटा है नहीं, फिर बड़े संभाल-सँभालके किया जा रहा है, दो पहर बीत रही है तो क्या, यह भी अब खतम हुआ। मेरे बग़ैर वह जा तो सकते नहीं। वह निश्चित है और एक मोनोग्रामपर झट-झट सुई फेर रही है। उस मोनोग्रामका भी इतिहास है। पर उस इतिहासको सुनायगी तो देर हो जायगी। और मास्टर साहब कहीं चले न जायँ !

काम ख़तम हुआ। तकियेकी तह करके, एक कागज़मे लपेटकर, कट्टो उछलते मनसे चली। घर पहुँची, पर मास्टर साहब कहाँ ?

यह क्या हो गया ? उसकी ज़बर्दस्तीके दिन क्या बीत गये ?—जरा-सी बात भी अब उसकी नहीं रक्खी गई ? अभी तो आ रही थी, ठैर जाते तो क्या होता ? वह रोई नहीं, सुन्न हो गई।

इधर मास्टरसाहबकी साहित्यिकताने बीचमे दख़ल दे डाला था। शरारत तो करना ही है, पर उसका अंत कड़वा (Tragic) क्यों हो ?

सब कुछ विनोद-पूर्ण (Comic) क्यों न बन जाय ? सोचा,—ताँगेपर विस्तर पहुँचा आये, आप घरसे ज़रा दूर दुबके खड़े रहे। जब कट्टो सोचमे मर रही हो, तब परमात्माकी विभूतिकी तरह आविर्भूत हो जाये।

कट्टो लकड़ीके ठूँठकी नाईं काठ-मारी खड़ी थी। यह कैसी आवाज़ आई—' कट्टो ! ' और उसीके साथ हँसीका ठहाका !

विद्युत्की तरह, क्षणभरमे, जीवनकी चुहलकी लहर उसके सारे शरीरमे फैल गई। रोमाच हो आया, शरीर उछलने लगा—

" तुम बड़े दुष्ट हो ! "

" यह कागज़मे क्या है ? "

" नहीं दिखाते, नहीं देते। "

" कैसे नहीं दिखातीं, कैसे नहीं देतीं ?—मै भी देखूँ।"

" मुझसे लड़ोगे ? बड़े अर्जुन हो !—लो। " देकर वह तो घरके भीतर भाग गई।

खोल-खाल कर देखा।—ओहो, बड़ी कारिगरीका काम है ! और यह !—यह मोनोग्राम तो कहीं मैने ही बनाया था। अब यह रेशमके धागोंसे गूँथ-गाँथ कर मुझे ही दिया जा रहा है ! इस भयकर चीज़को अपने साथ कैसे रक्खूँ ? इस गूँथनके साथ न जाने और क्या गूँथ दिया गया है,—सो उसका अधिकारी मै कैसे बन जाऊँ ?

भीतर कमरेमे कट्टोको ढूँढ पाया।

—" लो, अपनी कारीगीरी लो। मैने कुछ उचाट नहीं लिया।

—" मै नहीं लेती। "

—" मै क्या करूँगा ? "

—" क्या करोगे ? क्यों, पास रक्खोगे, अच्छी तरह रक्खोगे। नहीं रख सको तो फेंक देना। यह फेर देनेके लिये नहीं है। "

कमेडी तो गड़बड़ हुई जा रही है। यह विदा ट्रैजिक हो गई तो सदा कसकेगी। कहा—

" यही सही, साहब। रक्खेंगे,—बस।

लेकिन इन बातोंमे स्त्रीकी आँखोंको धोका देना सहज नहीं है।

—" रक्खो तो, नहीं रक्खो तो...."

—" फिर वही! रक्खेंगे, रक्खेंगे।.. लेकिन अब चला।"

—" जाओ!"

इस ' जाओ ' मै यह व्यथित आह-सी क्या बजी? यह फिर गडबड़! कहनेके लिये कहा—

" सबक पक्का करती रहना। आऊँगा, तो इम्तहान लूँगा। भला?"

—" अच्छा।"

—" अच्छा तो कट्टो, चला।" उसका एक हाथ अपने हाथोंमें लेकर कहा—

—" कैसी अच्छी कट्टो हो! खूब सबक़ याद करोगी। और मुझे भी याद करोगी—है न?

—" हाँ।"

ज़्यादह देर लगाना ठीक नहीं। मन धँमता जा रहा है। जेबसे सुनहरी जिल्दकी एक छोटी-सी किताब निकालते हुए कहा—

" लो, अपने तकियेका बदला।"

उन्होने चुप-चुप दिया और लड़कीने चुप-चुप ले लिया।

वह चल दिये, वह खड़ी रही।
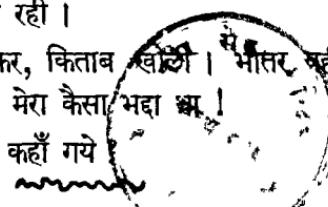
घर आई। किवाड़ बंदकर, किताब खोली। भीतर वही मोनोग्राम बना है। यह कैसा सुदर है, मेरा कैसा भद्दा था!

ओह, मास्टर साहब तुम कहाँ गये!

७

मास्टर साहब कश्मीरकी राहमे हैं। बिहारी साथ है, बिहारीकी माँ और बाबूजी, छोटा भाई छह बरसका विपिन, और बहन गरिमा।

गरिमा नाम भी हमारे मास्टर साहबका ही रक्खा हुआ है। जैसे उस अपने गाँवकी गँवई लडकीको देखकर इन्हे कट्टो सूझी वैसे ही इसे देखकर पहिले-ही-पहिल गरिमा सूझा था। गरिमा इनके मुँहसे निकला कि इनके और बिहारीके बीच लडकीका वही नाम पड़ गया। फिर तो घर भरके लिये नाम ही वह हो गया।

कालिजके दूसरे सालसे ही बिहारी सहपाठी है। बिहारीको यह इतने भाये कि बिना देखे ही घर-भर इनको जान गया। पहली दफे ही जब घरमें घुसकर बाबूजीको प्रणाम किया, तभी इन्होने अनुभव किया कि वह पहिलेसे ही उनके आत्मीय बन गये है, दूसरे नहीं है। माँके मुँहसे-जब निकला 'बेटा' ही सबोधन निकला। विपिन तब नन्हा था और गरिमा खिलनेपर आ रही थी।

बाबूजी वकील है। हैसियतके दुनियादार आदमी हैं। सत्यधनको जानकर गरिमाकी चिंता करना उन्होंने छोड़ दिया। घर-मे एक बार कहा—

"देखती हो? अब लड़कीको खूब पढ़ानेका काम ही रह गया है। आगेकी चिन्ता परमात्माने हमारे ऊपरसे हठा ली है।"

पर सत्यधनके क्या शेक्सपीयरसे कम आँखे हैं ? जुलियटसे कमका स्वप्न वह किसी तरह नहीं देख सकते। उनका मन किसी तरह नहीं मानता, कि शकुंतला होना अब बंद हो गई है। होती है, पर भाग्य चाहिये। और वह अपने भाग्यको हेय माननेको तैयार नहीं है।

गरिमा बड़ी अच्छी लड़की है। पढ़नेमे तेज़ है, बात करनेमे चतुर, देखनेमें लुभावनी है। और जब खिलेगी तो बात ही क्या!—लेकिन—लेकिन—ऊँह!

बी० ए० करनेके बाद बाबूजीने बड़े चक्करसे इस बातको बाँधना शुरू किया।

—"सत्य, अब क्या करोगे?"

—"अभी तो वकालत ही पढ़ना है।"

—"ठीक।...तुम्हारी माँकी तो उमर अब काफ़ी हो गई होगी।"

—"हाँ–जी।"

—"तुम्हे अब उनकी चिन्ता करनी चाहिये।"

सत्यने कुछ हाँ–हूँ कर दिया। बाबूजीने कहा—

"गिरीका पढ़ना तुमने देखा?"

"सुनते है, खूब तेज़ है।"

"हाँ अच्छी है। म्यूज़िकमे इनाम पाया है। अब नौवींमे है।"

सत्यने यहाँ भाग छूटना चाहा।

—"हो–न–हो, कभी–कभी उसे कुछ बता दिया करो। बिहारी तो बड़ा नट-खट है। वह तो कुछ करता-धरता नहीं।"

—"अच्छा।"

सत्यने सोचा जितनी देर लगती है, उतनी ही मेरी मुश्किल बढ़ती है। उसने मामला साफ़ कर देनेके लिये कहा—

"माँ ब्याहके लिये ज़ोर दे रही है। मैं कह चुका हूँ, वकालतसे पहिले ब्याह करना पैरों कुल्हाड़ी मारना है। ये आख़िरी साल है, इनमें पूरी मेहनत लगानी चाहिये।"

"सो तो ठीक" वकीलसाहबने कहा—"पर माँका कहना भी ग़लत नहीं है। उन्हे भी तो सेवाके लिये कोई चाहिये न?"

"पर वकालतसे पहिले तो मै कुछ कर नहीं सकता।"

"सो तुम्हारी मर्जी।"

जालको इस तरह काटकर थोडी देरमे वह विदा ले गया।

वकीलसाहब कभी युवा रहे है, और दुनिया देखी है। समझ गये, अभी लड़का स्वप्न देख रहा है। शेक्सपीयरकी पढाई अभी बहुत ताजी है। ज़रा पढाई ठडी होने दो, स्वप्नजगत्की जगह यह ठोस जगत् आने दो, तब वह अपने—आप राहपर आ जायगा। ज़ल्दीकी ज़रूरत क्या है?

तबकी निबटी-निबटी बात बाबूजी अब उठाना चाहते है। इसीलिये कश्मीर-प्रवासमे उसे इस तरह आग्रहपूर्वक बुलाया गया। जब वह झट आ गया, तो बाबूजीने देखा, लक्षण बुरे नहीं है। उन्हे क्या माल्रूम बीचमें और कुछ घट चुका है।

गरिमा इण्ट्रैस भी पार कर चुकी है, और किशोरवय भी। अब यौवन-वसंतकी दहलीज़पर खड़ी उस वसंतोद्यानकी झाँखी ले रही है। अभी देख रही है। वसतकी वायु झोके ले ले कर आती और उसके शरीर-पर अपना नशा फेक जाती है। थोड़ी देरमे दहलीजसे उतरकर वह आगे बढ़ चलेगी, बह चलेगी। अभी-अभी तो वहीं खड़ी-खड़ी चुप-चाप सब कुछ देख रही है। चलनेसे पहले वह अपनेको चाहसे भरपूर भर लेगी, जिससे यह चाह उसे यौवनके कालमे उड़ाये ले चले, उड़ाये ले चले।

रेल उन्हें पहाडकी हरियाली उपत्यकाओमेंसे ले जा रही है । बिहारी और सत्य जागते है,—बाकी सो रहे हैं । गरिमा सब कुछ अपनी पलकोंमें मीचे, पासवाली बेंचपर निश्चेष्ट सो रही है । साँस बँधे विरामसे आ जा रहा है । परिधान, बस कहीं-कहींसे तनिक ही अस्त-व्यस्त हुआ है । ऐसी सुखस्पर्श वायुमे नींद कैसी प्यारी लगती है, और उस प्यारी नींदकी जागते हुए चौकसी करना भी कैसा मीठा लगता है !

सत्यने सोचा—'एक यह है, जिसका भविष्य कैसा निश्चिन्त-सुखी है। जिसने जीवनमे आराम ही पाया और विलास ही देखा है । एक वह है—कट्टो, जिसे केवल 'न'कारकी मूर्ति ही बने रहकर जिंदा रहना होगा । यह कैसा वैषम्य है !' फिर सोचा—'अब मै क्या करूँगा? क्या मै इस वैषम्यको बढ़ाऊँगा? या—या साम्य बढ़ाऊँगा?'

अब इस प्रकारके तर्कसे, और पहले ठीक उल्टे कारणसे, सत्यने देखा, उसका और गरिमाका मिलान न हो सकेगा।

फिर वह कट्टोके बारेमे सोचने लगे । सोचा—'क्या दुखियोंके प्रति हम निश्चितोका कोई कर्तव्य नहीं है? क्या ससारका सारा सुख हथिया-लेना अन्याय नहीं है,—उनके प्रति जिन्हे उसका कण भी नहीं मिल पाया है? और कुछ नहीं तो उनके खातिर क्या हम अपना सुख कम नहीं कर सकते? .कट्टोको इसी तरह रहने देकर मै खुद कैसे विलास-गर्तमे डूब सकता हूँ?"

तभी उसे एक समाधान दीखा। वह प्रसन्न हुआ । अवश्य यही होना चाहिये । कट्टोको विधवा कहना 'विधवा' शब्दकी विडंबना है । विधवा हो भी तो भी क्या? उसका अवश्य विवाह होगा ।

इस समाधानसे उन्हे चैन मिला । उसका विवाह हो चुकेगा, तभी मैं विवाह करूँगा, पहले नहीं ।

८

कश्मीर आ गये। वहाँ उसने बिहारीको पकड़ा। बिहारी बड़ा निर्द्वन्द आदमी है। बचपनसे ही उसे आराम और पैसा मिला है, इससे इन दोनों चीज़ोसे उसका मन जैसे भरा हुआ है। वह इनकी ज़रा भी पर्वाह नहीं करता। वह जिंदगीमे Romance चाहता है। जोखमको वह प्यार करता है, और मौक़े ढूँढ़ता है कि जोखमके काम उसे मिले। उसके बाबूजी उसके इस स्वभावसे अप्रसन्न नहीं है। सीधी–भोली–चिकनी दुनियादारी, जहाँ गड्ढोंसे बच–बचकर सिर्फ पक्की बनी–बनाई सड़कपर ही चलकर संतोष मान लेना पड़ता है, कोई बहुत श्रेयकी चीज नहीं है—यह बाबूजीने अपने सफल जीवनसे समझ लिया है। उन्होने भी प्रतिष्ठा भी बनाई, रुपया भी पैदा किया–पर कुछ नहीं। जीवनमे कभी बड़ा मज़ा नहीं पाया। इससे वह बिहारीको खूब रुपया उडाने देते है, और खूब मनमानी करने देते है।

इसी लिये बिहारीका ब्याह नहीं हुआ। पिता इसके संबंधमे चिंता नहीं करना चाहते। आदमीकी तरह दुनियामे बढ़कर वही खुद अपना जीवन-सगी ढूँढ़ ले। उनका विश्वास है—बिहारी जैसे-तैसे एक ढंगके साथ दुनियामे अपनी राह तै कर जायगा,—उसके बारेमें ज्यादा परेशान होनेसे काम न चलेगा। उसको कोई बहू ला दी जायगी, तो उससे उसकी कभी न निभेगी, और खीझ-खीझकर वह अपनी जिंदगीको लुज कर लेगा।

लेकिन गरिमाके बारेमे वह बड़ी सतर्कता और बड़े ऊहापोह (Security) के साथ आगे बढ़ते थे। इस तरह उसकी ओरसे लापर्वाह वह अपनेको

कभी न बना सके । समझते थे,—व्यक्तित्व अलग-अलग तरहके होते है। उनकी पूर्णता भी अलग-अलग राहसे ही मिलती है।

इसी बिहारीपर सत्यने अपनी आस बाँधी थी। बिहारी कुछ करना चाहे,—अगर वह बुरा न हुआ, फिर चाहे कितनी ही जोखमका हो,—तो बाबूजी उसमे कभी रुकावट नहीं डालेगे, यह सत्य जानता था। उसने बिहारीके मनमे सावधानीसे कट्टोके लिये गुदगुदी पैदा की। बिहारी बड़ी जल्दी खिंच जानेको तैयार रहता है। बुराई उसमे नहीं होनी चाहिये, फिर तो बिहारीसे जो चाहे कराती। डूबतेको बचानेके लिये वह किसी सोच-विचारमे पडकर देर नहीं खोयेगा—फौरन कूद पडेगा। दस कदम दूर कूदनेके लिये सुगम किनारा होगा, तो भी वहाँ जानेको ठैरेगा नहीं। और जितना ही काम मुश्किल होता है, उतनी ही तत्परता और आनदसे वह उसमे कूद पड़ना चाहता है।

कट्टोकी बात सुनकर उसका मन उछला। सत्यने इस ढगसे बात रक्खी थी कि जैसे एक लड़कीके उद्धारका सवाल है। परिणाम जो होगा सो हो, बिहारी तैयार है। बिहारीने यह कह दिया। पर साथ ही पूँछा—

"तुम्हीं क्यों नहीं बढते ?"

सत्य अचकचाया।

—"मै ?.. न-अ। मै कैसे कर सकता हूँ ? तुम जानते हो, हो सकता है मेरे सबंधमें यह शुद्ध परमार्थका काम न हो।"

बिहारी इस उत्तरसे प्रसन्न हुआ। वह जानता था सत्य अबतक भी बहिन गरिमाके सम्बन्धमे पूर्ण अनुकूल नहीं हुआ है। इस कारण सत्यकी बातपर उसे विश्वास हुआ, और उसके लिये सत्यको उसने धन्यवाद दिया।

९

सत्यके सिरसे बोझ टला। उसे विश्वास था कट्टोको मनाना कठिन न होगा। और जब यह बात हो जायगी, तो उसे अपने सुखसे नाराज़ रहनेका मौका न रहेगा। वह भी फिर गरिमासे विवाह कर लेगा। और फिर....!....लेकिन तबतक ?—तबतक नहीं।

आख़िर एक दिन बाबूजीने बात छेड़ी ही।

—"सत्य, एक बात कहनी है। अब तुम्हे विवाहके लिये तैयार हो जाना चाहिये।"

बिना भूमिकाके बात इस तरह दो-टूक सामने डाल दी गई तो वह अचकचाया। कहा—

"पिताजी, मै वकालत नहीं कर रहा हूँ।'

'पिताजी' संबोधन जीवनमें बहुत कम बार उनके कानोमे पड़ा है। सब 'बाबूजी' ही कहते है। इसलिये, यह बड़ा प्यारा लगा। सत्य न जाने किस झोंकमे यह कह गया था। पिता बोले—'जानता हूँ।'

सत्यको अचरज हुआ।—"आप जानते है ?—कैसे ?"

"होशियार बहादुरकी बात मेरे कानोतक पहुँची है।"

"फिर भी आप कहते है ?"

"हाँ, कहता तो हूँ। क्या वकालतकी वजहसे मै तुम्हे गिरीको देना चाहता हूँ ? समझ लो, वकालतको नहीं, दूँगा तो मै तुम्हे गिरीको दूँगा। यह भी तो हो सकता है कि वकालत चले ही नहीं।"

बाबूजीके इस विश्वासपर सत्यका हृदय गद्गद हो गया। उसने भी अपना दिल खोल देना चाहा—

"एक बात है, पिताजी। गाँवमे एक लड़की है। मेरे साथ-साथ बढ़ी है। उसका कुछ ठीक हो जाय तो मै शादी करूँ। मै तो इधर यों विलासमे पड़ जाऊँ, और वह मेरे घरके पास झुरती–झुरती रहे,—न, यह मुझसे न होगा।"

बाबूजी ऐसी बातोको पसँद करते है, पर पागलपन समझते हैं। दुनियामे ऐसी साधुता कहाँ-कहाँ करोगे? जगह-जगह उसकी ज़रूरत है। और जहाँ पता चला, वहाँ तुम्हारी साधुतापर दावा करनेवाले ढेरो लोग इकट्ठे हो जायेगे। इससे अच्छा है, ऐसी मीठी मीठी साधुता-ओकी बहकमे आओ ही नहीं। यह बाबूजीकी राय है। पर कोई अच्छी-सी बेवकूफी करना ही चाहता है तो करो। बोले—

"तो उसके बारेमे क्या करोगे?"—

"कहीं उसका ब्याह हो-हुआ जाय तो ठीक है।"

"अच्छा।"

और अच्छा कहकर बाबूजी चुप हो गये। समझ गये, इस परमार्थके कामके लिये बिहारीको ही पकाया जा रहा दीखता है। बिहारीको इसमें संतोष मिलता है, तो इसमे भी कुछ हर्ज नहीं है। पर जान पड़ता है,—मुझे थोड़ी देर और भुगतना है। लड़केका थोड़ा-सा पागलपन और ठडा होना बाकी है।

इसमें उन्हें शंका न थी कि लड़का घूमघाम कर आयगा वहीं, जहाँ वह समझते है। आँधी आती है, बडी ज़ोरकी आँधी। माल्रम होता है सारी दुनिया उड़ जायगी। लेकिन कुछ रेत और फूँसके सिवाय कुछ नहीं उड़ता। आँधी आकर चली जाती है, और दुनिया अपने काममें लग जाती है। इसी तरह यह बिना पचे विचारोंका तूफान आया है। आकर चला जायगा, और सत्य ढंग-से लग जायगा।

१०

कश्मीर स्वर्ग है, और कश्मीरका शालिमार बाग़ स्वर्गोद्यान। उसी स्वर्गोद्यानमे एक बड़ेसे चिनारके पेड़के नीचे सब बैठे हैं। बाहर झीलमें उनका बजरा (House-Boat) ठैरा है।

जहाँ बैठे हैं, मख़मल-सी दूबका कालीन दूरतक फैला हुआ है। सामने ही नहर है। किलाते खाती बह रही है, मछलियाँ उसमें खेल रही हैं। वह नहर बहती-बहती फिर संगमरमरके बने हुए प्रपातपर जा उतरती है। धीरे-धीरे, बल खाकर, इठलाती हुई और खेलती हुई। मानो शाहजहाँकी सौंदर्य-कल्पना-द्वारा, जलमय होकर, लहरियोंका शुभ्र-नील हलका परिधान पहनकर, हमे अपनी अठखेलियाँ दिखला रही हो।

स्वर्गकी इस मनोरमताको गरिमा देख रही थी और आँखोंकी राह खींचकर अपने हृदयपर चित्रित करती जाती थी। उनको ऐसा मनो-रम चित्रपट कहाँ मिला होगा!

पानी उधर खेल रहा है, विपिन इधर इतनी दूर कैसे चैनसे बैठा रह सके!

"दादा, हम सैर करेंगे।' उसने सत्यसे कहा। वह सब बात सत्यसे ही कहता है, क्यों कि सत्य उसकी बात टालता नहीं।

उँगली पकड़कर सत्य उसे सैर कराने लगा। सब दिखाया। जब लौटे तो विपिनकी दोनों जेबे और हाथ पत्थरों फूलों और पत्तोंसे भरे थे।

—देखो, वह रही तुम्हारी जीजी ! [पृ ३५

यह भरा ख़ज़ाना दिखानेके लिये दौड़ा हुआ विपिन पेड़के नीचे आया तो वहाँ कोई न था। इतनेमे सत्य भी आ पहुँचा। उसने इधर-उधर देखा। विपिन अपने ख़ज़ानेको उस दूब-क़ालीनपर फैलाकर उसकी देखभालमें लग गया।

सत्यको दीखा—पास ही गरिमा, उस पेड़की तरफ़ पीठ किये, अकेली, एक कुंजके पत्रोंसे उलझ रही है।

—"विपिन, देखो, यह रही तुम्हारी जीजी!"

विपिन तो परमात्माकी लूटकर लाई हुई अपनी इस निधिको देख देख अचरज मना रहा और हँस रहा था। आवाज़ सुनते ही, अपना प्रशस्त ख़ज़ाना बटोर-बटार, जीजीके नामपर एक चीख़ देकर विपिन जीजीकी ओरको भाग छूटा। सत्य भी चला।

वह मुड़ी। विपिन बेतहाशा, अपनी जेबोंको सँभालता भागा चला आ रहा है। पीछे सत्य है। क्या करे!

विपिन पहुँचा—

"यह क्या कूड़ा भर लाया रे?" कहकर जेबोकी तलाशी लेनी आरंभ कर दी। चलो, यह अच्छा काम मिल गया।

"जीजी, यह देखो—ऐसा फूल तुमने देखा है?—और इस पत्थरमे कितने रंग हैं—एक-दो-तीन, नीला भी, लाल भी, सफेद भी ...!"

"देखा तुमने इसका म्यूज़ियम!" कहते हुए सत्य आ पहुँचा।

"देखो न, कैसा पागल लड़का है!"

कहा तो, पर आगे क्या कहेगी सो सोचनेमें लग गई। ख़ज़ानेकी जाँच-पड़ताल बंद हो गई।

अगर कोई उसके जमा किये ख़ज़ानेकी खूबी नहीं देखना चाहता, न सही। वह ख़ुद क्यों न देख-देख कर ख़ुश हो। विपिन वहीं बैठकर अपना अजायबघर सजाने और फैलाने लगा।

धानी साड़ीके ऊपर और कुछ नहीं है। वह साड़ी हवासे कभी-कभी स्वच्छंदतासे लहरे लेनेका प्रयत्न कर रही है, और उसे दाब रखना पड़ता है। पैरोमे जूता नहीं है, और बारीक-बारीक उँगलियाँ साड़ीसे बाहर निकली हुई है।

सत्यने अभी इतना ही देखा। अब ऊपर मुँह उठाया। गरिमाका चेहरा अब उस तरह न रह सका—वह झुक गया। सिरपरका साड़ीका किनारा अस्तव्यस्त हो पड़ा है, वेणीमे लटे कुछ इधर-उधर बिखर गई हैं। जहाँ-तहाँ एकाद सूखा पत्ता बालोके घोंसलेमे उलझ गया है।

शहरी, सभ्य, पढ़ी-लिखी लड़कीका यह वन्य रूप बड़ा मनोमुग्ध-कर जान पड़ा।

"गरिमा!"

वह चौकी।

"खडी क्यों हो? बैठ न जाओ।"

सत्य ख़ुद बैठ गया तो वह भी बैठ गई।

"बाबूजी कहाँ गये?—और बिहारी?" सत्यके स्वरमें थोड़ी-थोड़ी आंतरिक मुस्कानकी सी ध्वनि थी।

गरिमाने समझा, यह व्यग है। उसके अकेले पनपर व्यंग है। उठ-कर वह चलनेको हुई।

"क्यों...?"

"बाबूजी यहीं-कहीं होंगे। देखूँ।"

"नहीं, बैठो। बाबूजी इस अकेलेपनपर नाराज़ नहीं होंगे।"

गरिमा लजा गई। सत्यने भी देखा, यह कैसी बात निकल गई। "आओ, गरिमा, ये छोड़ो। ऐसे बाते कैसे होंगी। और हमें कुछ बातें कर लेनेकी जरूरत है। नहीं तो कहीं हम एक दूसरेको ग़लत समझने लगे।"

गरिमा चुप बैठी है।

"गरिमा, मै वकालत नहीं कर रहा हूँ। तुमसे यह कह देना ज़रूरी है। मेरा वकालत करनेका इरादा नहीं है। क्या करूँगा, सो नहीं कह सकता। पर कभी-भी बहुत-सा धन या मान कमा सकूँगा—ऐसी आशा नहीं है। यह हम सब लोगोको समझ लेना चाहिये।"

"तो मैं इस बातसे क्या करूँगी?"

"तुम्हारा तो उससे ख़ास सम्बन्ध है।" अबके फिर उसकी जुबान पर 'पिताजी' आ रहा है। "पिताजीकी क्या मंशा है, तुम जानती हो। पर मै तो अपनेको बहुत ही अयोग्य पाता हूँ।"

"आप जो कहे, कह सकते है। पर मै ऐसी बात नहीं सुनना चाहती।"

"नहीं; सुनना चाहिये, समझना चाहिये। तुम न करोगी, कौन करेगा? और मेरा साफ़-साफ़ कह देना कर्तव्य है। मै अमीर नहीं हूँ, न हूँगा। पहली बात। मेरे तुम्हारे जीवन-क्रममे बहुत अंतर मालूम होता है। फिर एक और बात है ...।"

गरिमा, जो कहो, सुननेकी प्रतीक्षामे है।

"....वह बात यह है कि पिताजीको मै अभी कुछ जवाब नहीं दे सकता। अभी कुछ भी न समझना ठीक है।"

इसपर तो वह चमक उठी—

" आपको यह मेरा अपमान करनेकी कैसे हिम्मत होती है ? "

यह क्या बात ! सत्य यकायक समझे नहीं, चुप रहे ।

" मैंने आपको क्या समझा है ? और आप क्यों यह सब बातें मुझसे कहने बैठे हैं ? मैं कह रखती हूँ, मेरे अपमानकी आपकी मंशा हो भी, तो भी अधिकार बिल्कुल नहीं है । "

सत्यने इस दृष्टिसे कभी इसपर विचार किया ही नहीं । पर गरिमाकी भावनाओंको समझकर उन्होंने देखा, सचमुच उससे बड़े अनौचित्यका कार्य हो गया । वह अब उसके प्रतीकारको उद्यत हुए—

" मै....मैं....

किंतु बीचही मे सुनना पडा—

" देखिये, आप यह न समझिये, आपका मुझपर बिल्कुल अधिकार है । इससे आप धोखेमें पड़ सकते है । "

सत्य विरोधमें गुनगुनाये । पर क्या कहे ?—कि यकायक—

" अच्छा, अब आप क्या अपनी कट्टोकी कुछ बात कह सकते हैं ?"

कट्टो ! यह उसे गया जाने ! ज़रूर बिहारीकी शरारत है । बोले—

" आप कट्टोको कैसे जानती हैं ? "

" ' आप ' न कहिये । ' तुम ' ही ठीक है । आखिर इतनी सभ्यताकी ज़रूरत ? आप तो सभ्यताकी ज़रूरतसे अपनेको ऊँचा पहुँचा मानते है ।...हाँ, कट्टोकी बात कहिये । मैं कैसे जानी उसे, आपको इससे क्या ? "

उन्होंने देखा कैसे एक शहरी लड़की उन्हें निरुत्तर कर सकती है ! जब वो दोनों अकेले हैं, संसारका कोई नियम जब उनमें अंतर डालनेको

उपस्थित नहीं है, तब कई बातोंमें यह लड़की ही उनसे ऊपर है। यह सत्यने देखा और उसपर विजय पानेकी इच्छा हो आई।

"वह गँवई लड़की है, बड़ी पगली है, उसका क्या सुनोगी?"

"बड़ी पगली है!—सुनूँ तो उसका ज़रा पागलपन?"

"ऊँह...."

"वह तकिया भी तो उसीका पागलपन है न!"

"वह, चौके। देखा, बात बढ़ रही है। तो यह खोजमें भी रहती है! तकियेका भी पता लगा रक्खा है! यह बात है! मेरा तो अधिकार कुछ है नहीं, अपने अधिकारकी सतर्कतासे रक्षा भी करनी आरंभ कर दी! पर अब वह बातमें कहाँतक झुकते जाँय? बोले—

"हाँ, है तो।"

"है तो?—बड़े ठंडे दिलसे कहते है यह आप!"

"नहीं तो क्या...."

"अच्छा जाने दो। गरिमाने कहा और तभी एक ताज़े उठे हुए भावसे चेहरेको चमका कर पूछा "अच्छा, मैं वैसी ही बन जाऊँ तो कैसा?..तुम्हें अच्छा लगेगा?"

"तुम बन नहीं सकतीं।"

"बन सकती हूँ, यही तो तुम जानते नहीं।"

'आप' से 'तुम' पर वह कब उतरत आई सो उसे पता नहीं चला।

"कैसे?"

"ऐसे"

कहकर वह झटसे भाग छूटी और पासके एक दरख्तपर चढ़ गई। जैसे अभी बंदरकी आत्मा उसमें आ गई हो! सत्य भी उस दरख्तके

नीचे पहुँच गया। पहुँचना था कि उसके सिरपर सूखे पत्तों और छोटी-छोटी टहनियोंकी बारिश हो पड़ी।

"अब कैसा—?" सत्यसे पूँछा गया।

"अब मैं पछताऊँगा" सत्यने कहा।

"पछताना नहीं। कट्टोको दुनियामे सब कुछ न मानने लगना। तकियेकी बात है तो आज एक मुझसे ले लेना—तैयार रक्खा है।"

सत्यको लगा जैसे अब वह यही करेगा। कट्टोको भूल जायगा।

गरिमा उतरी। झपटकर विपिनको साथ लिया। हँसती-खुशती, एक हाथसे सत्य और दूसरेसे विपिनको खचेड़त हुए हुई चली। बाग़के दर्वाज़ेपर पहुँचकर एक अँगुली मुँहपर रखकर कहा—'बस, अब-चुप।'

फिर वह भारी-भरकम गरिमा अपने बजरेमे पहुँची। बाबूजी और बिहारी वहीं थे।

कश्मीरसे लौटकर, बिहारीका विवाह सम्पन्न करनेकी इच्छासे सत्य सीधा अपने गाँव पहुँचा।

११

आये देर नहीं हुई कि कट्टो भागी-भागी आई। धोती मैली है, बाल बिखरे है, पसीना आ रहा है, हाँफ रही है। हाथ आटेमे सने है।

"आ गये!"

"हाँ, आ गया।"

"बडी जल्दी आ गये! छुट्टी हो गई?"

"बस अब छुट्टी ही है।

"अच्छा तो मै अभी आऊँगी। रोटी बनाकर। अम्माँका जी अच्छा नहीं है। सो मै ही कई रोजसे रोटी बनाती हूँ। सुना, तो ऐसी ही भाग आई।....बिगड़ो मत, अबके ठीक होके आऊँगी।"

कहकर ठैरी नहीं, भाग गई। मास्टरजी सोचमे पड़ गये। मनमें ही बोले—'कट्टो ऐसी तू कबतक रहेगी? नादान लड़की, क्या तू नहीं जानती, तेरे आगे क्या है? नहीं जानती तब तक ही अच्छा है, नहीं तो रोनेके सिवाय तुझे कुछ काम नहीं रहेगा।"

पर मास्टरजीने बीड़ा उठाया है तो करके ही छोड़ेगे। लेकिन बिहारीकी चर्चा कैसे चलाये?—यह सोचकर उन्हे लाज आती थी। बात कैसे बढ़ानी होगी!

थोड़ी-ही देरमे कट्टो फिर आ पहुँची। क्या निबट आई?—नहीं तो। कपडे तो वैसे ही है, वही हाल है।

"चलो आज हमारे यहाँ खाने चलो। माँजीसे मै कह आई हूँ।"

कैसी लड़की है! माँसे भी पूछे आई! न वक्त देखा न अपना हाल! जो सूझा कर डाला,—न सोच, न विचार, न आगा न पीछा!

मास्टरजीने कहा—चलो । मास्टरजीने सोचा है अपनी बातके लिये उससे अनुकूल कोई अवसर न होगा जब वह परोस रही होगी ।

खानेको बैठे । बहुतोंका आतिथ्य भुगता है, पर यहाँ तो आतिथ्यका नाम ही नहीं । ऐसा निमंत्रण उन्होंने पहला ही देखा । अम्माँ तो पड़ी हैं, कुछ मदत कर नहीं सकतीं । कट्टो सीधी चूल्हेके पास जा पहुँची । तवा थाम दिया था । चूल्हा सुलगाकर उसपर तवा रखते हुए कहा—

"बैठो न,—थाली ले लो ।"

मास्टर साहबको अपने आप, जहाँ दीखे वहाँसे, थाली ले लेनी पड़ी, और अपनी समझके मुताबिक़ जगहपर जा बैठना पड़ा ।

"देखो वहँ पँटड़ा है,—और वहाँ पानी रक्खा है ।"

यह कसरत भी भुगती, पर इसमे बड़ा मज़ा आया । ऐसा बेतकल्लुफीका बर्ताव, इच्छा रहते भी, अभी कभी न कर पाये थे ।

"देखो, मेरी रोटी जल जायगी, नहीं तो मै ही दे देती ।"

"और मैने ही जो ले लिया ।"

"यही तो । ...ज़रा थाली आगेको लाना....और....अरे, नहीं-नहीं, चौकेसे दूर !"

"यह तो बड़ी पाबन्दी है,—कट्टो !"

"अम्माँका चौका है, मेरा नहीं । मै तो करती नहीं, पर जिसे बड़े चाहें वह तो कर देना अच्छा ही है ।"

"मैं कब कहता हूँ—बुरा है ।"

"हाँ, कभी मत कहना बुरा है ।"

इस लड़कीकी बात तो देखो ! मास्टरसे गुरुआनीसी बात करती है ! पर मास्टरजीको यह शिक्षा बड़ी मीठी लगी ।

आलूका साग और परौंवठे दे दिये गये। उनके साथ नमक तो दिया, अचार भी, पर क्षमा याचनाका एक भी शब्द नहीं–जैसे छत्तीस व्यंजन परोसकर सेठ लोग हाथ जोड़कर पेश कर दिया करते है।

"वक़्त तो था नहीं और कुछ बनाती, और तुम्हें रोटी खिलानी थी ज़रूर। ... साग और दूँ? ...भूखे रहे तो मेरी क़सम।"

मास्टरजीने बड़े चावसे खाया। जो कहे उन्हे स्वाद नहीं आया, वह महा झूंठा।

मास्टरजी अपनी बात शुरू करनेकी फ़िक्रमें थे।

"कट्टो, हमारी भी बात सुनो।"

"सुनती हूँ—यह परौंवठा लो,—क्या कहते हो?

"यह पेटपर जुल्म ठीक नहीं। हाँ, मेरा एक दोस्त है।...."

"देखो, मैं सुनती हूँ—परौंवठा जल जायगा तो?"

"अभी जो गया था मै, तो वह मेरे साथ था?"

"कौन?"

"वही मेरा दोस्त।"

"कौन दोस्त?....कहाँ?....ठेरो, मेरा प ..."

"तुम सुनती तो हो नहीं। ."

"सुनती हूँ। निबटनेसे बाद मन लगाकर सुनूँगी। अभी तो देखो ...।"

पहिले प्रयत्नमें इस अजीब ढंगसे निष्फल होना शुभ-लक्षण न जान-पड़ा। अगर कृतकार्य न हुए तो....?

निबट-निवटा कर वह आई। नई धोती पहने है, बाल सँवारे हुए है, सकुची-सकुची, आ बैठी है। अबके अपने साथ थोड़ी-सी लाज बटोर लाई है।

मास्टरजीने देखा यह भी मौका बेढंगा हो गया है। ऐसे भारी-भारी वातावरणमे बातका रुख बिगड़ न जाय! तो भी प्रयत्न तो करेगे ही।

" तुम कुछ कहते थे "—कट्टोने ही शुरू किया।

" हाँ, कट्टो, एक बात कहनी है। "

मास्टरजीने विचित्र दृष्टिसे देखा। कट्टो ज़रा झेंपी।

" कट्टो, तुम्हारी सहेली सरमो कहाँ गई? "

" उसका ब्याह हो गया। सुसराल है। "

" और चिरोंजी? "

" उसका तो ब्याह अभी बैसाखमे होके चुका —तुम्हे नहीं मालूम?"

" कट्टो! ... "

कट्टोने देखा कुछ बात बड़ी देरसे गले तक आई हुई है, और वहाँ अटक रही है। अब वह बात निकल ही आना चाहती है। कहाँ—
" क्या?.... "

आवाज़ गिर गई—कहीं कोई सुन न ले! फिर हृदयके रससे भीने, हलके-से ये शब्द निकले—

" कट्टो, तुम्हारा ब्याह.... !"

" कट्टोके फोड़ेमे अँगुली चुभाना क्या उन्हींके भाग्यमे लिखा था?

कट्टो सुन्न, स्तब्ध बैठी रही। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे आँखे उठाईं—वही आँखें! पलके उनपर झुकी हुई है, और वहाँ आर्द्रता फैली हुई है! फिर धीरे-धीरे, धीरे-धीरे उन्हे गिरा लिया।

" कट्टो, मेरा एक दोस्त है।.... "

जो-चाहे कहे जाओ,—कट्टोको कुछ मतलब नहीं।

" कट्टो मेरा एक दोस्त है। मेरे जितना ही पढ़ा है। हम दोनों साथ पढ़े है। बड़ा अच्छा है, कट्टो मेरी बात मानों, बड़ा अच्छा है।

वाप वकील है, पैसे-वाले है, बड़े आदमी है । कट्टो, वह तुम्हे रानी बना कर रक्खेगा। मै इसका ज़ामिन हूँ। कट्टो !—कट्टो !....मानो तो....?"

कट्टो क्या कहे, कैसे कहे ? उसके पास वही आँखे है जिन्हे उठा सकती है और गिरा सकती है । उन्हींमे पढ़ लो क्या लिखा है—वही उसका उत्तर है ।

"कट्टो, मेरी बात नहीं मानोगी ? मेरी एक बात !—उसे टाल दोगी ? मुझे फिर तुमसे कुछ कहना नहीं रह जायगा ।"

उत्तरमे मिला मूक मौन और आँखोंमे भरी विवशता और आर्द्रता ! इन्हे पढ़नेमे कौन भूल कर सकता है ?

"अब तुम जानो । तुम नहीं जानतीं, तुम्हारे आगे क्या है । फिर कभी इस क्षणके लिये पछताओ तो मुझे दोष न देना !

आँखोंने कहा—"मै किसीको दोष नहीं देती। पर तुम—तुम मुझसे ऐसी बाते न कहो ।"

"—जैसी मर्जी। भगवान् तुम्हारा भला करें ।"

इसके बाद दोनों चुप बैठे रहे । फिर उस नीरव त्रास-भरे सन्नाटेको भंग कर कट्टोने पूँछा—'जाऊँ ?'

"जाओ"

"जाऊँ ?"

"जाओ"

"जाऊँ ?"

"जाओ"

वह चली गई ।

१२

मनमें एक बात उठी और गिरी, उठी और गिरी। बार-बार गिराया गया, लेकिन फिर-फिर वह उठ आती है।

कट्टोका शून्य, स्पष्ट भविष्य आँखोंके सामनेसे हटकर नहीं जाता। कैसा वह हा-हा-कारसे भरा हुआ है? और वह?—वह आगे आते विलासको आमंत्रण दे रहे है!

एक बार फिर बुलाकर चेष्टा कर देखे। बुलाया—वह आई।

साँझ गाढी होती जा रही है। प्रकाश मटमैला हो चला है। कमरेमे सूनी घड़ियाँ, सँध्याके अँधियारेमे, डोलती-डोलती मानों ठैर गई है। सत्य एक कुर्सीपर बैठे है, वह भी जैसे जड़-जगत्के ही पदार्थ है, ऐसे निश्चेष्ट और निस्पंद बैठे हैं।

हवा जैसे घुसी हो ऐसे चुपचुपाने निरपेक्ष भावसे कट्टो वहाँ घुस आई। आकर खड़ी हो गई।

तब उठकर सत्यने कमरेका एक झरोखा खोल दिया। अस्तंगत सूर्यकी एक अरुण आम्भा कट्टोके चेहरेको उजला कर गई। आसपासकी और चीजोंको देखते, कट्टोका वह चेहरा जगमगाता दीखने लगा।

सत्यने देखा,—आँखें आँसुओंसे खूब धोई गई हैं, और फूल आई हैं। जैसे फूली-फूली कमलकी धुली-हुई दो लाल पँखुड़ियाँ हों। लेकिन उसके सारे भेद और सारे स्नेहको पलके मज़बूतीसे ढँके हुए हैं। सत्यकी दृष्टि उन झँपते-हुए कपाटोंतक पहुँचती है, भीतर नहीं पहुँच

पाती, और लौट आती है। आज सत्य इनके भेदको प्राप्तकर अपने हृदयके भीतर छिपा लेना चाहता है। कोई उसे नहीं देख पायेगा।

आज यह अलौकिक मूर्ति, इस अँधेरे वातावरणमें, मानों सत्यकी आत्माको प्रकाश दिखलानेके लिये आई है।

मूर्तिने मुँह ऊपरको उठाया। तभी, जैसे बादल सामनेसे फट गया हो, एक तेज़ सफ़ेद चमकती-हुई किरण, भरपूर उस उठे-हुए मुँहपर पड़ी।

सत्यने एक निगाह देखा और सहम गया। यह तो कट्टोका मुँह नहीं है—कुछ और ही है। चँचलतासे नहीं, सुष्ठु गाँभीर्यसे भरा-हुआ, बालोचित औत्सुक्यकी जगह स्नेहाभिषिक्त प्रणयाकाक्षासे खिलता-हुआ, यह विह्वलता बरसाता हुआ चेहरा कट्टोका नहीं है!

उसी चेहरेने कहा—क्या है?

"कट्टो, मेरी बात नहीं मानोगी?"

"मानूँगी। सब बात मानूँगी। पर, यही नहीं।"

"यही नहीं?—क्यों?"

"क्यों?—सो मत पूँछो। इसलिये कि मेरे भाग्यमे नहीं है। मै अभागिन हूँ।"

"कट्टो,—देखो।"

"कट्टोने देखा। भरपूर देखा।

सत्यपर उसी समय किसी अलौकिकताकी दीप्ति छा गई। एक नई-सी बात उठी है, जिसने इनकी देहको दिपा गया है।

"कट्टो, मुझे देखो। खूब देखो।—देखती हो?"

" देखती हूँ । "

" जाने दो सब बात । मैने तुम्हे बहुत दुःख पहुँचाया । अब उसका प्रतीकार करूँगा । "

" नहीं....नहीं.... "

" देख लिया ?—....अब बोलो, क्या कहती हो ? मुझे—मुझे—क्या कहती हो ? "

कुछ नहीं कहती । सूरज छिप गया है । बस वह अँधेरेमे मास्टर साहबके पैर टटोल लेना चाहती है ।

पैरोको पाकर कट्टोने अश्रुजलसे उनका खूब ही अभिसिंचन किया ।

१३

सत्य वहाँ ठैर न सके। उनके प्राणोंमे जो एक ज्वार उठा है,—मीठे दर्दका एक तूफ़ान-सा—वह दीवारोंसे घिरे उस कमरेमे झेला नहीं जा सकेगा। पैर आँसुओंसे धोये जा रहे है, और मन देहके बंधनमेसे फट निकलकर बह पड़ना चाहता है। कमरेमेसे निकल पड़े,—सुध बुध जैसे खो गई है,—पता नहीं कहाँ जाकर क्या करेंगे। पास ही गंगाकी नहर बहती है। वहीं पहुँचे। ऊपर चारो ओर विना सीमाका आकाश फैला है, जैसे माँका अचल फैला हो; हवा हलकी-हलकी बह रही है, मानों, उसी माँकी ठंडी उसासे है; पास-ही-मे है वह गहन रोती-जाती हुई जल-धारा, मानो अपने बच्चोके छोटे-सुखों और बड़े दुःखोंपर उसी माँके बहाए-हुए आँसुओंकी धारा हो। माँके इस अंकमे आकर, जो अब सारी सृष्टिको थपकियाँ दे-देकर सुला रही है, और उनके ऊपर अपना तारोंसे छिटका अचल तानकर, निरंतर जागरूक, उनकी नींदकी चौकसी कर रही है,—इस अंकमे आकर उसे चैन-सा मिला। आनंदव्यथामे बोध प्राप्त हुआ। उनकी सावधानता लौट आई। मालूम हुआ, अब वह नींद चाहते है। जीवनके चूडात उत्कर्षपरसे खिसक आये है, तो थकान हो आई है। घर आकर गाढी नींदमे सो रहे।

* * * *

इधर कट्टो सौभाग्यके पहाड़के नीचे दबकर अचेतन सी हो गई। जिसके पास तक, स्वप्नमे भी पहुँचनेकी हिम्मत नहीं हुई थी,—वही सौभाग्य जब एकदम इस तरह सिरपर बरस पड़ा, तो कट्टो विह्वल हुई और फिर बेसुध हो गई। सुध आई तो मास्टर साहब जा चुके थे, वह अकेली ईंटके फ़र्शको भिगोती हुई पड़ी थी। उठी, अँधेरा था, अँधेरेमे ही धोतीका किनारा माथेके आगेतक सरका लिया, और टटोलती टटोलती-दर्वाज़ेकी ओर बढी।

कहीं कोई देख न ले ! इस सौभाग्यको किसीकी नज़र नहीं लगने पायगी। आज उसमे न जाने कहाँकी लाज समा गई है। धोतीके बाहर अपना अँगूठा दिख जाता है तो सिहर उठती है, सिमट कर वहीं बैठ जानेको जी होता है। आज वह अपने सौभाग्यको साथ लेकर, मन होता है, कहीं गड़कर सो जाय कि फिर उठे ही नहीं; कहीं दुबक जाय कि फिर सामने पड़े ही नहीं। सिमटी-सिमटाई, सहमी-सहमी अचक-से घरमे घुसी, और बत्ती जलाकर खाटपर बैठ गई।

रातभर नींद नहीं आई। उसने भी व्यर्थ चेष्टा नहीं की। सारी रात न जाने कहाँ-कहाँ उड़ती रही, धरतीपर तो एक क्षण भी टिककर ठैर सकी नहीं।

ओहो, आज उसका छोटा-सा मन फूलकर कैसा हो गया है, मानों सारे विश्वको अपने उछाहसे और अपने प्रणयसे प्लावित कर देगा !

सारी रात जगकर उसने एक बात तै की। कल पर्वीके मेलेमे वह ज़रूर जायगी। बहुत ज़रूरी तौरपर उसे कुछ चीज़े ख़रीद लानी है। मँगा तो सकती नहीं, पता जो चल जायगा !

बारह-एक बजेसे इस बातकी टोहमे है कि कोई पर्वी जानेवाला जगे और वह अपने जानेकी बिध ठीक कर ले।

क्या लायेगी ?—दो चूड़ियाँ लाल, एक बिंदी-टिकियोंकी डिबिया, एक....ऊँह ! वह कैसे बताये ? याद नहीं।....लाज आती है।.... कल देखा जायगा।

और बात देखो। कैसी गंगाकी पर्वी आई है,—ठीक जब उसके भी जीवनका पर्व अचानक ही आ पहुँचा है। उसके मनमें संदेह नहीं, यह इस पर्वीका ही प्रसाद है।

आखिर रात कटी और औरतोकी तैयारियोंकी धूम सुन पड़ी। पड़ोसके अग्रवाल बनियोंके यहाँसे कई जा रहीं है,—उन्हींके साथ जाना उसने भी ठीक-ठाक कर लिया।

१४

सत्य जागे तो नये लोकमे जागे। कल बीत गया, आज नया दिन आया है। यह नया फटता हुआ दिन, रोज़के नित्य-नियमित कार्य और आजके विशेष-विशिष्ट कार्य—आदि-आदि उनके मस्तकपर क़ब्जा जमा बैठे है,—कल शामकी घटना किसी भूले कोनेमे पड़ गयी है। कल कुछ हो तो गया है,—पर वह उनके सामने धुँधुँला-सा है। अभी अवकाश नहीं है कि वह उसे स्पष्ट करके देखे। और कामोंकी भीड़ भी तो है; जिसे निपटाना है।

काम खतम होते जा रहे है और वह नये-नये पैदा करते जा रहे हैं। बात यह है कि कलकी घटनाकी स्मृति जो और सब बातोंको ठेल-ठालकर अपने आप सबसे आगे आ खड़ा होना चाहती है—उसे सामने पाने और सामने लानेसे सत्य डरते है। लेकिन ज़बर्दस्तीकी व्यस्तता ज़्यादे नहीं टिक सकती। खाना खाकर अपने कमरेमे आये, तो कलकी घटनाकी एक-एक बात उठकर हठात् उनके सामने आ खड़ी होने लगी। सबको एक बार देख गये, कुछ समझ नहीं पाये यह सब क्या और कैसे हुआ, और कुछ-कुछ अपनेपर शर्माये। उन्हे उसकी वास्तविकतापर सदेह होने लगा।

यह क्या हुआ ? बात तो बिहारीकी करने चले थे। सो तो न हुआ, पर मै कैसे सामने पड़ गया ? बिहारी क्या सोचेगा ! ...

‘ आखिर मैने क्या कहा ? यही कि वह मुझे स्वीकार करती है या नहीं ? वह रो पड़ी, स्वीकार करती है। .पर उसने ऐसा कहा तो नहीं !....

‘ तो क्या मै उसे अपनाऊँगा ?—क्या अपनाना होगा ? ’

सोचकर देखा, बात कुछ ऐसी-ही-सी प्रतीत होती है।

तब बहुत-सी बातें बढ़-बढ़कर विरोधमे खड़ी होने लगीं। बाबूजी, गरिमा !....बाबूजी भी कुछ नहीं; और गरिमा !--गरिमा भी खैर देखा जायगा। लेकिन—लेकिन--?

इस बहुत बड़े लेकिनमे कई बाते थीं।—यह कैसी अजीब-सी बात होगी !—लोग क्या कहेंगे ? बिरादरी और गाँवमे क्या हैसियत रह जायगी ?—यह सब होगा कैसे ? और—और कट्टोकी माँ !--फिर-फिर मेरी माँ !

यहाँ वह बिल्कुल रुक गया। यहाँ मानो ऐसा प्रतिबंध मिला जिसके आगे गति नहीं, जिसे लाँघ सकता ही नहीं।

माँ यह कभी नहीं होने देगी। सुनेगी तो मर जायगी। थोड़ी-सी बातोंपर वह जिंदा रहती है। लड़केको इतनी तो रस्सी दी, पर यह अधर्म नहीं होने देगी। रोकेगी तो कैसे—अगर मै अड़ जाऊँ ?—पर जान ज़रूर दे देगी, इसमे शक नहीं। मौतसे जब वह कुछ सालोंके अंतरपर ही रह गई है, तो क्या मै ही उसकी बची-खुची ज़िंदगीके ये साल छीन लूँ और उसे अपने ही हाथोंसे मौतके मुँहमे ढकेल दूँ ?

पर....पर कल क्या हो गया है, और कट्टो !

इसपर उसे ध्यान हुआ उसे सुबहसे देखा नही। अभी जाकर वह कट्टोसे सब बाते साफ़ कर लेगा। कट्टोके घरपर जाकर पुकारा—

" कट्टो !"

कट्टोकी माँकी आवाज़ आई—" कौन है—"

" मै हूँ, अम्माँ "

" आओ, बेटा।"

भीतर पता चला, कट्टो गंगास्नानको गई है। सत्यने देखा, माँ ज़िंदगीके दूसरे किनारेके पास आती जा रही है। न जाने कब यह माँ भी कट्टोसे छिन जाँय !

" बैठो, बेटा !. .देखो, वह लड़की गंगा चली गई। मुझमे अब कस रह नहीं गया, काम नहीं होता। हाथ काँपते है,—ज़िंदगी भर काम करते रहे है, अब काँपते हैं तो उनका क्या दोष ? लड़की नहीं जाती तो क्या था ? पर वह अपनी ही चलाती है। बार-बार कह चुकी हूँ, देख, ऐसे दुख देखेगी। दुनियासे नीचे होकर रहना अच्छा। मेरे पीछे तेरा कोई सहाई नहीं होगा। तब तू मेरी सीख याद करेगी। अब तो तेरी निभे चली जाती है। पर दुनियामे और माँ तेरे थोड़े-ही बैठी है। इसपर वह रोने लगती है ! कहती है—'अम्माँ, तू ऐसा मत कह। मै तेरे बाद बहुत थोड़ी जीऊँगी। तेरे सामने तो मै अपनी चला लूँ, फिर चलानेको कब मिलेगा !' . .बेटा, वह अजीब लड़की है। फिर फूट-फूटकर रोने लगती है। मेरे पैरोमे सिर रख देती है, कहती है—'सिरमें पैर मार दे, मैं ठीक हो जाऊँगी, अम्माँ !—बेटा, मै उसे दोस नहीं देती। अब दस दिनसे तो मैने काम छुआ नहीं, वही सब करती थी। नेक आलस नही, नेक कलेस नहीं। फिर ऊपरसे मेरी टहल ! ये उसके कामके दिन है, बेटा ?—और बच्चीं इतनी पढ़ती है, खेलती है और खाती है। पर, इन बातोंमें क्या ? काम ऐसी मुस्तैदीसे करती है, बेटा, कि मै क्या कहूँ। किसी घरमें होती तो रानी ही होती। पर रोयेसे क्या ? जो लिखा था, सो हुआ। जो किया था सो भुगता। ...बेटा, मै उसे बिल्कुल दोस नहीं देती। गगा गई है, चलो सुस्थ हो आयगी। इतने काममे नेक बिसराम भी तो चाहिये। आयगी, तो फिर जुट जायगी।....बेटा, एक बात कहूँ ? कहना बिरथा तो है ही, पर कहे बिना रहा नहीं जाता। बेटा, वह तेरी बड़ी तारीफ़ करती है। कहती अघाती नहीं। सुपनेमे भी उससे वही सुन लो। बेटा, बेटा, देख, मेरे पीछे उसकी ख़बर्दारी रखियो।....मै भी तेरी माँ ही सरीखी हूँ। तू नहीं होता तो....तो....मैं उसे ज़हर ही देकर जाती। दुनिया ऐसी

बुरी है, बेटा, कि क्या कहा जाय। तेरे जैसे यहाँ बिरले होते है—रतन होते है। उनपर ही य' टिकी है, नहीं तो डूब जाती। तेरेमें ही मुझे धीरज है।"

सत्य, विपदाकी यह कहानी नतमस्तक हो कर्तव्यसे विमुख होते हुए अपने मनके लिये उपदेश-मंत्रके रूपमे स्वीकार कर रहा था। अपनी अकेली बेटीको,—जो विधवा है और बच्ची है,—इस चूसने-की-घात-लगाये-बैठी दुनियामे, अकेले छोड जानेकी तैयारी करती हुई दुखिया माँकि कलेजेसे निकलती हुई यह कलप, यह आशीर्वाद, सत्यने वरदानके रूपमे स्वीकार किया। प्रार्थना की, परमात्मा उसे इसके योग्य बनाये। प्रार्थना की कि उसे अपने संकल्पमे स्थिरता और सामर्थ्य दे। जिस बातको उठानेके ख्यालसे यहाँ आया था, उसे बहा दिया।

माँने फिर कहा—"अरे सत्य, तेरा ब्याह कब होगा? सुनते है, लड़की खूब पढ़-लिख गई है। वह तो कह रहे है, पर तू ही मना कर रहा है। क्यों रे, यह क्यों?"

हलवेमे यह नमककी डली गलेमे अटक गई। कड़वापन फैल गया। उसी कड़वी मनस्थितिमें कड़वाहटके साथ कहा—

"अम्माँ, उसने फिर यहाँ न आने दिया तो?"

"अरे, कैसी बात करता है रे!"

"अम्माँ, मै तो गाँवका हूँ, वह शहरकी है।"

"हिश्—श्—त!"

"अम्माँ, मै तो अभी करता नहीं। करूँगा इसका भी क्या पता?"

"मैं तो अपने लिये कहती हूँ, रे। कट्टो,—एक बात कहूँ, तैंने कट्टो नाम बड़ा अच्छा रक्खा, है वह कट्टो ही,—कट्टोको एक जीजी मिल जायगी। तू सदा उसे पढ़ानेको थोड़े—ही बैठा रहेगा; अपने कामपर

लगेगा।—बस वह इसे पढ़ाया करेगी, शऊर सिखायगी और यह उसकी टहल करेगी। मै उसे सब समझा जाऊँगी। नेक बेअदबी करे, आनाकानी करे, उसे काट डालना। पर रखना उसे अच्छी तरह।"

"देखो, अम्माँ, क्या होता है। जो होगा, सो होगा। और सब अच्छा ही होगा। पर, अम्माँ, कहता हूँ तुम्हारी कट्टोको कुछ मुश्किल नहीं पड़ने दूँगा।"

"नहीं! कट्टो तबतक खुश नहीं होगी जबतक तू ब्याह न करेगा। वह अभीसे कह रही है—जीजी आयगी तो वह उससे पढा करेगी और उसकी सेवकाई करेगी।

"अम्माँ ..."

वह इस बातका प्रतिकार करना चाहता है। क्या वह नहीं जानता कि इससे भी बड़ी खुशी उसके भाग्यमे हो सकती है। क्या वह कट्टोको नहीं जानता?—नहीं जानता कि उसकी बड़ी खुशी किस बातमे होगी? और क्या वह उसीके लिये नहीं तैयार हो रहा है? पर उसने कहा—'अम्माँ' और वह रुक गया। जैसे किसीने जुबानको पकड़ लिया—'यह क्या कहता है?—अम्माँ इस बातपर क्या सोचेगी?'

लेकिन असमाप्त बातका ध्यान कर वह अपनेसे प्रसन्न हुआ। उसीके आवेशमे अटकी बातको खतम करते हुए कहा—

"अम्माँ,....कट्टोकी जीजी आई, और उसने कट्टोको प्यार नहीं किया तो मै उसका सिर तोड़ दूँगा।"

"और कट्टोने गड़बड़ी की तो उसका भी सिर तोड़ देना, मै कहे देती हू। कहीं-भी हुई, मै इससे बड़ी खुश हूँगी।"

माँकी बातोंसे उसने बहुत कुछ दृढ़ता पाली, और स्वस्थचित्तता भी। तब कुछ देर और ठैरकर, और माँको हँसा-हँसूकर, वह घर आया।

१५

पुरुष बनाता है, विधाता बिगाड देता है—अँग्रेजीकी एक कहावत है। संशोधन कर यह भी किया जा सकता है—पुरुष बनाता है, स्त्री बिगाड़ देती है। तब भी कहावतमे कम तथ्य या कम मज़ा नहीं रहता। बात वास्तवमे यह है कि पुरुष बहुत कम बनाता या बिगाड़ता है, सब कुछ विधाता ही बनाता, विधाता ही बिगाड़ता है। इसी तरह पुरुष कुछ नहीं बनाता-बिगाड़ता, जो कुछ बनाती या बिगाड़ती है, स्त्री ही। स्त्री ही व्यक्तिको बनाती है, घरको, कुटुम्बको बनाती है; जातिको और देशको भी, मै कहता हूँ, स्त्री ही बनाती है। फिर इन्हे बिगाड़ती भी वही है। आनंद भी वही और कलह भी; चुहल भी और उजड़ापन भी; दूध भी और खून भी; रोटी भी और स्कीमे भी; और फिर आपकी मरम्मत और श्रेष्ठता भी;—सब कुछ स्त्री ही बनाती है। धर्म स्त्रीपर टिका है, सभ्यता स्त्रीपर निर्भर है, और फैशनकी जड़ भी वही है। बात क्यों बढाओ, एक शब्दमे कहो,—दुनिया स्त्रीपर टिकी है। जो आँखोंसे देखते है, चुपचाप इस तथ्यको स्वीकार कर, दबके बैठे रहते है, ज्यादे चूँ नहीं करते। जिनके आँखे ही नहीं,—वो माने या न माने, हमारी बलासे।

सत्य कट्टो और गरिमाके बीचमें इधर-से-उधर टकरा रहा है। अभी कुछ स्थिर कर पाया था कि कट्टोकी माँने ढा दिया, वहाँसे कुछ स्थिर करके चला तो यहाँ अपनी माँसे मुकाबला हुआ।

खाना खिलाते-खिलाते माँने कहा—

" सत्य, ब्याह अब और नहीं टल सकता। "

सत्यने कुछ गुनगुन किया।

" नहीं। बहुत देखा। अब तुझे मेरी माननी पड़ेगी। "

" अम्माँ, मै. . "

" मै—मै कुछ नहीं। जो कह दिया, बस। "

" मै नहीं कर सकता, माँ। तुम जानती नहीं।"

" क्या नहीं जानती ?"

" कुछ नहीं, लेकिन ..."

" क्या लड़कीमे कुछ है ? "

" नहीं-नहीं, माँ। लेकिन...."

" फिर वही। मै जानती हूँ, लड़की वड़ी अच्छी है। तू भी उसे चाहता है। मै और कुछ नहीं सुन सकती।

"माँ, मै नहीं कर सकता।"

" नहीं कर सकता! क्यों ?—मै सुनूँ तो। "

" मै.... मै. ..

" कुछ बोलता है नहीं,—कहता है नहीं कर सकता। "

" माँ... मै...."

" —नहीं करता तो जा मर। यह माँ भी तेरी ज्यादे नहीं बैठी रहेगी। '

फिर उमड़न आई, माँका मुँह बिगड़ा,—हिला;—सत्य रोना नहीं झेल सकेगा। बोला—" माँ...."

"मैंने क्या किया जो अपनी बहूका मुँह नहीं देखा। हाय! ऐसे ही मर जाऊँगी।"

अब माँ फूट पड़ीं। सत्य चलने को हुआ——ठैरा कैसे रह सकता था! खाना छोड़ उठा, हाथ धोये,——तब माँने एक चिट्ठी जो बराबर उनके हाथोंमे थी, सत्यके पास फैंक दी।

सत्यने देखा, बिहारीकी चिट्ठी है। माँके नाम है। बिहारी २-१ रोज़में यहाँ पहुँच जायगा। बाबूजी शादीका सब कुछ ठीक-ठाक कर लेना चाहते है। इसी लिये बिहारी आ रहा है।

यह जानकर सत्यपर बर्फ़ सा पड़ गया। बिहारीसे वह किस मुँहसे मिलेगा! और शादीका कैसे क्या होगा! सिरकी पीड़ाको हाथोंमे लेकर खाटपर पड़ रहा और सो गया।

१६

कट्टो गगाजीसे बड़ी बड़ी चीजें लेकर लौट आई है। अम्माँके पास आई—

"अम्माँ, मै गंगा चली गई, तुम बिगड़ी तो नहीं; तकलीफ़ तो हुई होगी। पर, अम्माँ पर्वी अबके जरूर नहाना चाहती थी। अब कहीं नहीं जाऊँगी।"

"बेटा कुछ नहीं। पीछे तेरे मास्टर आये थे। मैने तेरी बात कह दी।"

"क्या अम्माँ ?"

"यही कि तेरी जीजी झटपट ले आये, तू अब उन्हींसे पढ़ना चाहती है।"

ओहो, एक भेदकी बात कट्टोके पास है, अम्माँ उसे जानती भी नहीं। इस विशिष्ट-अधिकारपर कट्टो गर्वसे भर रही है। बोली—

"अम्माँ, तो उन्होने क्या कहा ?"

"कहा क्या ?—तेरा मास्टर अजीब है, कट्टो। बोला, देखा जायगा, अभी जल्दी काहेकी है। कट्टो, क्या पता वह शायद ऐसा ही रह जाय!"

हाँ, कट्टोका मास्टर अजीब है। पर यह माँ क्या जाने उसका अजीबपना!

"कट्टो, मेरी बातपर वह कहता था कि कभी तेरी जीजी आई भी और उसने तुझे पढ़ानेमे यह-वह किया तो सिर फोड़ दूँगा।"

कट्टो बहुत सुन चुकी, आगे और कुछ सुनना नहीं चाहती,—पूँछा—

"अम्माँ, आज क्या रांधूँ?—चावल ?"

"जो-चाहे।"

वह भाग गई। भागकर चौकेमें नहीं गई, अपने कमरेमें आई। वहाँ एक तेल-से-चिकने-हो-रहे आलेमें, अभी-अभी ताज़ी-ताज़ी बिसातीसे ख़रीदी एक टिकुलीकी डिबिया, एक छोटा-सा दर्पन, एक राधा-किसनकी तस्वीर,—ऐसी ऊँट-पटाग चीज़े सजाकर रख दी है। वहाँ आकर, उस छोटेसे-दर्पनको लेकर, दोनों भौंहोंके बीचोंबीच, ज़रा ऊपरको, सींकसे उस डिबियामेसे, बड़ी नन्हीसी एक टिकुली लगा ली। देखती रही,—कैसी यह लाल-लाल बिंदी काली पड़ती जा रही है!

तभी दर्पनको फेक देना पड़ा और धोतीके छोरको माथेके एकदम आगे खींचकर, भागकर, कमरेके एक कोनेमे सिमट बैठ गई। हाय! लाज आती है!

"मै कैसी लगती हूँ,—कैसी लगूँगी? मास्टर देखेगे तो क्या सोचेगे?—ऊँह, देखेगे ही नहीं। मै जाऊँगी ही नहीं।...फिर याद जो करेगे!—करे, मेरा क्या? ..मै तो नहीं जाऊँगी।....कैसे जाऊँगी? .

तभी एक बात उठी।

"मै गई ही—और उन्होंने 'कट्टो' कह दिया तो?—वह ऐसे ही है, समझते है नहीं, कुछ भी कह देगे। ..उन्होने कट्टो कहा, तो—तो मेरा तो मरन हो जायगा।"

इसी बहकमे सोचते-सोचते तीव्रता आ गई। तभी वह कोनेमेसे उठ आई। हाथके एक झटकेसे धोतीका छोर पीछे जा पड़ा, सिर उघड़ गया। उघड़ा रहो,—सो क्या हुआ। दावात क़लम काग़ज ले आई, और खाटपर बैठकर लिखने लगी। बिंदी वहीं माथेपर बैठी-बैठी ऊपर उघड़े सिरको देखकर और नीचे इस लिखी जाती हुई चिट्ठीको देखकर, चुप-चुप कैसी लाल-लाल हँसी हँस रही है!

१७

सत्य सोकर उठा है तो कुछ समझ नहीं पा रहा है। पास ही वह बिहारीकी चिट्ठी सिकुड़ी-सिकुड़ाई पड़ी है। उसने अनमनाये मनसे उसे उठाकर पढा। जैसे पहली ही बार पढ़ा हो,—वह चौक उठा।

क्या होगा? वह क्या करे? माको मर जाने दूँ?....बिहारीसे क्या कहूँगा, उसे क्या सफाई दे सकूँगा, और वह मनमें क्या समझेगा?

यह कट्टोने बीचमें आकर क्या गड़बड़ मचा दी है! वह कौन है,—मेरी क्या लगती है? मुझे उसका क्या देना है?—फिर वह मुझे क्यों इस तरह तंग करती है?

तभी किसीने चुपकेसे कानमे कहा—

"वह कहाँ तंग करती है?—इतने दिनसे तुम्हारे पास आई तक तो नहीं! वह तो तुमसे कुछ कहती नही, अपने चुपचाप दिन काट रही है, वैसे ही काट ले जायगी।"

सत्य बड़ी मुश्किलमे है। बड़े संकटमे है। रह-रह-कर सोचता है—मै क्यो व्यर्थ अपने ऊपर ज्यादा जिम्मा लेकर विधाताके काममे अड़चन डालूँ? होने दो, जो हो, मैं कुछ नहीं बोलता। लेकिन रह-रह-कर मानसक्षेत्रमे आँसुओंसे पद-प्रक्षालन करती हुई उठ आती है वह कट्टो!—जो कहती है,—'मै कुछ नहीं कहती। मै किस लायक हूँ? जो चाहे सो करो।'

यह गड़बड़ उनसे खत्म होती मालूम नहीं होती। वह क्या करे? सोचा, अपनेको निश्चेष्ट, ढीला छोड़ दूँ—जो होगा, हो जायगा।

लेकिन इस तरह देखा, निश्चेष्टतासे कुछ नहीं होगा। यही होगा कि बाबूजी जीत जायेंगे, कट्टो हार जायगी। जो हारता रहा है हारेगा, जो जीतता रहा है जीतेगा। और कट्टो इस हारको ही प्राण-पणसे स्वीकार कर दूसरेकी जीतको खट्टा बना देगी। कट्टो तो जीवनके इस

खेलमे हारका ही दाँव आगे बढाकर चलती है, इसलिये जो मिलता है, उसीमे उसकी जीत है।

सोचते-सोचते उसका सिर मानों धुन डाला गया है। एक ओर अपनी बातकी रक्षा है और बिचारी कट्टोकी रक्षा है। दूसरी ओर अपनी हैसियत की, अपनी माँकी, अपने सब कुछकी रक्षाका ख्याल है। और कट्टो क्या सचमुच आवश्यक रूपमें, उनके ही द्वारा, रक्षणीया है!

कट्टो, मैं अपनी माँके पास जाता हूँ। पैरोमे सिर रखकर कहूँगा,—'माँ, बहुत दुःख दिया। अब और दुःख न दूँगा। आज्ञा करो।' यह सोचकर अपनी माँके पास जानेके लिये वह संकल्प कमानेमे लगा।

तभी मुँहपर नाक और धूलकी लेही लपेटे अग्रवालोंके घरकी खीरा आखड़ी हुई।

"क्यो, खीरा बेटी, क्या है?"

"ये कागद" कहकर उसने हाथकी मुट्ठी खोल दी।

"किन्ने दिया. ."

"उन्ने ही...." कहकर वह अपना बताशेका इनाम लेने चली गई। बुरी तरह मिड़ा हुआ वह बदामी काग़ज खुला—

"मेरे मेरी एक बात है। उड़ाना नहीं, बुरा होगा। मुझे अबसे 'कट्टो' मत कहना। लाज आती है। ब्याह हो जाय तब चाहे जो कुछ कहना। उससे पहले नहीं,—तुम्हे मेरी कसम।—कट्टो।"

"पीछे तुम अम्माँके पास गये, मुझे पता चल गया है। क्यों गये? मेरे कारन सोचमे मत पडना।"—"कट्टो"

खत पढकर उनका माँके पास जाना रुक गया।

१८

बिहारीको घरपर चैन नहीं पड़ा। भीतर जो कट्टोका कल्पनाके सहारे-बनाया हुआ एक चित्र बैठ गया है, वह दिलको गुदगुदाता रहता है। इसीलिये पिताको वह पत्र लिखानेके लिये उकलाया और इस तरह गाँव आनेका बहाना प्राप्त किया। बाबूजी भी अब, सचमुच, बहुत बाट देखते बैठना नहीं चाहते। वह सत्यको खो देनेको तैयार हैं, पर इस वर्षसे आगे गरिमाका ब्याह टालनेको तैयार नहीं।

बिहारी, पिताकी इन सब इच्छाओंको और क्या करना होगा, इस सबको भी समझकर, सत्यके गाँवके लिये रवाना हुआ।

कट्टो कैसे मिलेगी, कैसी होगी—इन सब संभावनाओंपर उसकी कल्पना दौड़ रही है और उसे चुटकियाँ ले रही है। वह अपनी कल्प-नाओंको बहकाना चाहता है, पर वे न अखबारमे, न किताबमे और न रेलके बाहरके खेत और जँगलके दृश्योंमे ही अटक पाती है,—वे छूट-छूट कर वहीं गाँवकी कट्टोके पास भाग निकलती है।

वह गाँवमे कभी नही आया है। तो भी उसे दिक्कत न होगी,—वह सब ठीक-ठाक कर चुका है।

कट्टो पानी भर रही हो तो—?—तो मुझे क्या समझेगी?—क्या करेगी?

ओह! अगर कहीं मास्टरसाहबके पास पढती हुई मिली तो बड़ा मज़ा है।

....भई, बड़ी अच्छी बात होगी। मै गाँवमें रहने लगूँगा। एक झोपड़ी बनवा लूँगा। शहरमे रहना कुछ नहीं,—तमाम दुनियाकी आफ़त! उसे तो मै शहरी कभी नहीं बनाऊँगा। देखीं तो हैं शहरकी,—मानों आस्मानपर चढ जायेगी!....नहीं जी, गाँवमे रहेगे हम,—मै और कट्टो।....बाबूजी कहेंगे तो कहो,—मुझे नहीं पसंद यह वकालत मनहूसियत छा जाती है। ज़िदगीका मजा कुछ रहता ही नहीं। पैसा, अदालत, मुवक्किल और झूँठ और फरेब, और....। नहीं, बढिया किसान बनकर रहूँगा। लोग कहेगे,—क्या कहेगे? वकालत मै पास करूँगा, जरूर करूँगा, फिर अपनी अँग्रेजी डिग्रीको, चोग़ों और सनदोंको खूँटी-पर लटकाकर कहूँगा,—लोगो, वह रही तुम्हारी वकालत और वह रही तुम्हारी अँग्रेज़ी, उन्हे हाथ जोड़ो, मुझे छोड़ दो। मुझे चुप-चाप किसान बनकर रहने दो। कैसा मजा रहेगा, खुशीसे भरी और फिक्रसे खाली, मनुष्यतासे भरी और बनावटसे खाली,—बड़ी सुँदर ज़िंदगी होगी वह। लोगोंसे कहूँगा,—सलामत रहे ये सनदे, इन्हे लटका रहने दो, कभी-कभी झाड़नसे उन्हें झाड़ भी दूँगा; पर मुझे तो मेरी किसानी भली, और मेरी गाय—गाय एक जरूर रक्खूँगा—और, और वह मेरी कट्टो!...

इसी तरहकी बहकमे वह बेरोक बह चला। रेलमे बैठे-बैठे इस तरह जो बगीचे उसने बनाये और किले खड़े किये,—उन सबके बीचमे आ प्रतिष्ठित होती थी वही कट्टो!

तब वह सोचता था, बनी रहे यह तन्दुरुस्ती और यह शरीर, अपने झोंपड़ेमे मै कट्टोको महारानी बनाकर रक्खूँगा। रुपया मुझे नहीं चाहिये, सब सत्यको दे दिया जाय तो ठीक, वह इसके काबिल भी है। मै तो ऐसा ही ठीक रहूँगा।

गाँवमें आखिर वह आया। लड़कियाँ राहमें मिलीं,—पर कट्टो तो कोई नहीं है। क्या वह उसके ताँगेको इस तरह देखती रह जाती? न जाने क्यो, उसे विश्वास है, कट्टोको पहचाननेमे भूल वह कभी कर ही नहीं सकता।

सत्यके मकानपर पहुँचकर चिल्लाया—'मास्टर साहब!'

सत्य सो रहा है। आजकल सोना ही उसका काम रह गया है।

सत्यकी माँ आई। झिझकती हुई, घूँघट आगे डालनेको तैयार। देखा, कोई सत्यका समवयस्क है—बिहारी ही न हो!

"दिल्लीसे आ रहे हो, भाई?"

"हाँ जी" समझ गया वह माँजीके सामने है। झट-से पैर छुए।

"मै बिहारी हूँ।"

"सो ही तो मै समझी।"

"सत्य दादा कहाँ है?"

"ऊपर सो रहा है।"

सामान रख-रखाकर कहा—"माँजी, मै ऊपर जाऊँ?"

"हाँ-हाँ। वह ज़ीना है।"

बिहारीको जल्दी है। कट्टोके कारण सत्यसे मिलनेकी जल्दी है। झट ऊपर पहुँच गया।

सत्य सो रहा है। जगाये या न जगाये? पाँच-सात मिनट बैठनेके बाद, बिना जगाये उससे रहा न गया।

"मास्टर साहब!"

मास्टर साहबको झझकोर उठाना पड़ा। उठे।

"बिहारी!—बिहारी तुम!"

मास्टर साहबको यह क्या?—जैसे खून जम गया।

बिहारीने कहा—"हाँ-हाँ, अभी टपका पड़ रहा हूँ। घबड़ाओ नहीं, हौआ नहीं हूँ, सदेह बिहारी ही हूँ। यह प्रमाण लो।" कहकर, एक बार कंधा पकड़कर फिर झकझोर दिया।

मास्टर साहब अपने-पनमें आये।

"आओ, बैठो।"

"आया भी हूँ, और बैठा भी हूँ। अब आदमी बन बैठो, यों रोते-से मत बने रहो।"

दोनों फिर दो कुर्सियोंपर बैठ गये। बात शुरू होनेकी देर थी, बिहारी बोला—"हाँ कहो....

मास्टरसाहबने उँचककर, चिहुँककर, कहा—"कहो!....

और उनकी दृष्टि उस दूर क्षितिजके पास-को उड़ती हुई चीलपर जा गड़ी।

१९

जिस बातको कहना ही है, उसको कबतक गलेमे अटकाये रक्खा जाय। लेकिन कहनेमें बड़ी कठिनता होती है–जैसे आत्म-ग्लानिका घूँट जो उबककर मुँहमें आता है, उसे फिर गलेके नीचे उतार लेना पड़ता हो! सत्य दोनोके ही अपराधी है,—कट्टोके भी और बिहारीके भी। दोनोंको बढाया, और अब दोनोको खोकर आप बच निकले जा रहे है। तो भी सारी कहानी सच-सच कह दी।

पर बिहारी मर्द है,—सच्चा बिहारी है। इतनी मेहनतसे अभी-अभी जिस भविष्यके स्वर्गको खड़ा किया था, और जिसे अभी सजा ही रहा था, उसको सत्यने तहस-नहस कर डाला है। और सत्य वह व्यक्ति है जिसने उसे उस भविष्यकी नींव डालनेको ललचाया था। लेकिन अभी तो, उस भविष्यके चकनाचूर ढेरके पास खड़ा होकर, वह सिर सीधा रखकर मुस्करा ही देगा;—पीछे फिरचाहे कितना ही रोये। वह, अभीतक अपनेसे अलग खड़ी-हुई निराशाके अँधेरेको छेदकर, यह भी देखता है कि सत्यका दोष नहीं है। लेकिन सत्य एक बात कहकर उससे डिग रहा है,—यह उसकी समझमे नहीं आता।

"चलो, मेरा झगड़ा छोड़ो। लेकिन अब तुम क्या करोगे?"

"माँको मार नहीं सकूँगा।"

बिहारी जानता है उसकी बहिनका मामला है। पर बिहारी असमं-जसको बहुत जल्दी काट फेंकता है। उसने अपने जीवनका आदर्श

कुछ बहुत-ही स्पष्ट और निर्णीत धारणाओंपर गढ रक्खा है। उसमें ज्यादे हेर-फेर और घुमाव-फिराव नहीं है। इसी लिये ऐसे मौकोंपर वह संकटमे नहीं पड़ता। इसी लिये वह सदा हलका-हलका बना रह सकता है,—क्यो कि वास्तवमे वह खूब भारी है। उसके व्यक्तित्वका लंगर खूब गहराईमे, बड़ी मजबूतीके साथ, कुछ सिद्धांतोमे गड़ा हुआ है, इसलिये वह चाहे दुनियाके पानीपर कितना भी लहराता क्यो न रहे, (Buoy की तरह)—डिग नहीं सकता। एक ओर गरिमा, दूसरी ओर कट्टो—इन दोनोंके बीच अपनी राह बूझते हुए सत्यको, इसीलिये बिहारी ठीक निर्णय दे सकता है। बिहारीने कहा—

"कुछ भी कहो, मै होता, मै अपनेको छल न सकता।"

"यह बात नहीं है, बिहारी। लेकिन....लेकिन....कुछ और ही बात है।"

"मुझसे पूँछते हो तुम? मै तो यह कहूँगा कि तुम आत्मप्रवंचन करते हो, और उसके साथ चलनेवाली जो आत्मग्लानि है उसे, अपनी माँ और बाबूजी और गरिमाकी ओट बैठकर, बचा जाना चाहते हो। सो नहीं होगा, सत्य।"

"तुम अन्याय करते हो, बिहारी।"

"ऐसा समझो, ऐसा ही सही। लेकिन, सत्य, तुम थोड़ा अन्याय नहीं कर रहे हो।"

"मै बँधा हुआ हूँ।"

"वचनसे नहीं?"

"उससे भी ज्यादेसे—कर्तव्यसे।"

"कर्तव्यसे?—ओहो! फिर तो आगे जुबान बंद। इस शब्दके आगे तो मै हाथ जोड़कर बैठ जाता हूँ। जी तो कुछ और होता है,

पर इस शब्दकी अद्भुत पवित्रताको याद कर हाथ जोड़ ही देने पड़ते है। अभी काली माईके पंडोंसे कुछ कहूँ तो इसी थैलीका एक शब्द सुन पड़े—धर्म ! जहाँ धर्म और कर्तव्य बहुत सुन पड़ते है, वहाँ मुझे कानपर हाथ रखनेके अतिरिक्त कुछ काम नहीं रहता। सुना सत्य ?"

बिहारीकी यह वक्तृता सत्य पचा नहीं सका। अबतक वह अपनेको बड़ा मानता था, बिहारी भी उसे बड़ा मानता था। लेकिन जब देखा बिहारी बिना-प्रयासके यह अंतर लाँघ सकता है, तो यह अनुभव सत्यको रुचिकर न लगा। कहा—

"भाई बिहारी, यह लेक्चर देना कबसे सीख गये ?"

"नहीं-नहीं, माफ करो।....तो क्या तुम निश्चयपर आ गये ?"

अभी निश्चयसे जरा दूर थे, पर इस लेक्चरने मानो धक्का देकर, उन्हे वहाँ पहुँचा दिया।

"हाँ, अपनी माँसे आज ही कह देना होगा। तुमको तो इससे प्रसन्न होना चाहिये।"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं। मै आया ही इसलिये हूँ। लेकिन एक बात बताओ,—कट्टोसे तुमने कह दिया है न ?"

"न....

"न ?—कहा नहीं ?—तुम बड़े सुस्त हो। जरा शंका थी, तभी यह बात उसे कह देनी थी। लेकिन अब न कहना, यह काम अब मुझे करना होगा। पर एक काम करोगे ?"

"बोलो....

"एक बार कट्टोको बुलाना होगा, मेरा परिचय कराना होगा।"

२०

दोनो मित्र बैठे है, अपने-अपने ध्यानमें है,—और प्रतीक्षामें है। कट्टो अब आना चाहती है। कट्टो आना चाहती है,—कहीं खटका न हो। समय मानो रुक गया है, हवा ठैर गई है। मित्रोंके निकलते हुए साँस ही मानो वहाँ कमरेमे जिंदा चीज है।

कट्टो आई। छायाकी तरह, चलती हुई मूर्तिकी तरह।

है, य' कौन है! एकदम बहुत लम्बा घूँघट निकल आया और वह दर्वाजेके पास ही, इधर पीठ करके, दोहरी होती हुई खड़ी हो गई।

बिहारीके मनमे हुआ सत्यको शाप दे डाले।

सत्यके जीको, जैसे कोई ऐंठकर निचोड़ने लगा।

सुन्न सन्नाटा रहा। किसीको बोल नहीं आया। तीनोके मनसे न-जाने क्या-क्या निकल कर अलक्षित और अव्याहत रूपमे उस कमरेकी शून्यतामे व्याप्त हो गया। एक भारी त्रास सारे कमरेमें भरकर उन तीनो-हीके जीको घोटने लगा।

अब बिहारी जागा। सत्यकी तो जीभ मानों जकड़ गई है,—वह मानों रो देगा, बोल नहीं सकेगा। ऐसे संकटमें बिहारी ही त्राण देगा। उसने कहा—"भाभी!...."

सत्य काँप उठा। कहीं वह अभी दयाकी भीख न माँग उठे!

कट्टो, अगर हिल सके, तो किबाड़के पीछेवाली परछाईमें समा जाय! 'भाभी!'—इस शब्दके अर्थने मानों बिजलीकी तरह उसके शरीरमें कौंध कर उसे सुन्न कर डाला।

" भाभी !—यह नहीं होगा । मै पर्दा नहीं करने दूँगा । " यह कहा और पास पहुँचकर, दोनों हाथोंसे दो छोरोंको पकड़कर, बिहारीने घूँघट उलट दिया !

है–है !–बिहारी, यह न करो, शर्म खाओ, तरस खाओ । देखो, वह काँप रही है, मुरझती जा रही है, सिंदूर-सी पड़ी जा रही है,—कहीं और कुछ न हो जाय !

बिहारीने देखा, माथेपर नन्हीं-सी टिकुली लगी है, बाल चिपटाकर सँवारे-हुए है, हाथोकी दो लाल चूड़ियाँ उझक-उझक कर अपनेको दिखला देना चाहती है ।

हाय, सत्य तू पशु है !

अब क्या सिंदूरिया यह रग ठेरेगा, यह टिकुली क्या फिर लगेगी ?—क्या यह गाँवकी लड़की दूसरी बार अपनेको ऐसा सँवारनेका अवसर पायेगी ?

हाय, अगर बिहारी....? लेकिन....

" भाभी ! ऐसे नहीं खड़ी रह सकोगी।....तुम्हारा....नटखट बिहारी आया है। वह तुमको अपना परिचय देना चाहता है । चलो, उसकी सुनो । "

कलाई पकड़कर, उस मुर्झाती-हुई बालाको निर्दयी बिहारी खचेड़ ले चला । ले जाकर कुर्सीपर प्रतिस्थापित कर दिया ।

अब खून उसमे दौड़ रहा है । गड़ तो कहीं पाई नहीं,—और अब अवसर निकल गया, अब हठात् वही दरख़्तवाली कट्टो बने बिना उससे नहीं रहा जायगा । वैसे यह अपनेको बिहारी कहनेवाला निर्दयी भी उसे क्या यों ही छोड़ देगा ?

अब कट्टोकी गर्दन उठी। आँखे उठीं, फैलीं, कोयोमे ज़रा स्निग्धता आयी, और फिर हँसीं। वही आँखे,—जिनमे छना हुआ स्त्रीत्व भरा है!

"देखो, अब मै पराया नहीं हूँ। बताऊँ, मै कौन हूँ, क्यों आया हूँ?" बिहारी उन आँखोंमे प्रोत्साहन पाकर बोलता ही रहा "बताऊँ?—इन तुम्हारे मास्टरजीपर कुछ रोजसे एक भूत चढ आया है।..."

ओंठ फैले, जहाँ अभी गुलाबी-सी चमक थी गालोंमे वहाँ अब एक छोटा-सा गड्ढा पड़ गया, वह मुस्कराई।

"उस भूतका नाम है गुम्मा-सुम्मा। जिसपर चढता है, उसे गुम्म-सुम्म कर देता है। मै भूत उतारनेमे खूब होशियार हूँ। सालों मै इनके साथ पढा हूँ,—यह मेरी तारीफ जानते है। इस भूतकी बात जानकर फौरन दौड़ आया हूँ। देखो, भाभी, अब करता हूँ चेष्टा इनके भूत उतारनेकी।

कट्टो हँसी—

"चुप क्यों बैठे हो जी!—नहीं तो य' शुरू करे उतारना तुम्हारा भूत!"

उनकी तो जीभ जैसे और भी ऐंठी जा रही है। बोलना चाहते हैं, पर जैसे वह जवाब दे रही है।

"ऐसे नहीं, देखो एक काम करो। तुम उधर जाओ, मै इधर खड़ा होता हूँ। एक—दो—तीन करूँगा, तीनपर एक साथ मै भी और तुम भी, इनकी बगलके ठीक बीचों-बीच बिंदुपर गुदगुदी मचा दे। ठीक बीचों-बीच बिंदुपर, इधर-उधर नहीं; और ठीक तीनपर, आगे-पीछे नहीं!—नहीं तो गुम्मा-सुम्मा और चढ़ जायगा। समझती तो हो न? ....ठीक....

" हाँ-हाँ, बिल्कुल ठीक लो, बिल्कुल....

" लो बोलता हूँ। ए....क, दो....ओ....ओ,....देखो....ठीक.... हाँ... बोलता हूँ आगे! ..."

" यह क्या तुम लोग तमाशा बना रहे हो?"—सत्य झल्लाया।

बिहारी बोला—" देखा, भागा वह भूत, भागा!"

" चुप रहो जी, शरारत बंद करो।"

कट्टोकी हँसीकी फुहार उछली पड़ रही है।

" देखो, मैंने कहा था न? दवाके नामसे ही काम चल गया।"—बिहारीने कट्टोसे कहा।

बिहारीपर डाँट पड़ी—" बिहारी!...."

कट्टोने कहा—" अब तो भाग गया भूत। अब तो बोलो।"

सत्य इधर झुका—" कट्टो,...."

कट्टो! दूसरेके सामने यह! बोली—

" किसे कहते हो कट्टो? कौन है कट्टो? तुम्हे शऊर नहीं है,—कौन है क्या है,....! कट्टो–कट्टो!"

बिहारी कट्टोकी इस भड़कनपर मर जाना चाहता है।

" अच्छा, बिगड़ो मत। और कोई नाम भी तो नहीं मिलता—क्या कहूँ?"—सत्य आखिर बोल सका।

" कुछ भी कहो—हम नहीं जानते।"

" अच्छा,....यह मेरे साथी है। मैने एक रोज तुमसे जिक्र किया था,—यह वही है।"

बात ख़तम नहीं हो पाई थी कि कट्टोने बिगड़कर बिहारीसे कहा—

" तुम....

तभी कुछ हो गया कि उसने फिर घूँघट आगे बढ़ा लिया,—पहिले जितना नहीं, ज़रा थोड़ा।

" भाभी, मै तुम्हे अब शर्माने न दूँगा।" कहकर उसने घूँघटको वैसे ही उठा दिया।

लेकिन अब कट्टो अदब नहीं भूल सकती।

बिहारीने कहा—" एक मिनटमे बड़ी-बूढी हो जाना चाहती हो तो तुम्हारी मर्जी। लेकिन एक बात कहो। मै तुम्हारे घरपर आऊँ तो भोजन जरूर कराओगी न ? "

कट्टोने अपने मास्टर-साहबकी ओर देखा, इस भावसे कि—आज्ञा है ? फिर कहा—

" हाँ-हाँ, खूब कराऊँगी। कल सुबह निमंत्रण है। याद रखना, भूलना नहीं। इन्हें भी साथ ले आना। "

२१

इसी डाकसे बाबूजीको दो पत्र गये है। बिहारीने लिख दिया है,—सब ठीक हैं, मुहूर्त्त निकलवा ले, सत्य सँभला हुआ है, सत्यकी माँ जल्दी ही चाहती है।

इधर बिहारीकी शेखी देखकर सत्य फिर पलटा खा गया है। साथ ही समझता है,—आनाकानी करते रहनेमे भी कुछ बात है। उसने बाबूजीको यह पत्र लिखा है—

"बाबूजी, बिहारी आ गया है, प्रसन्न है। उसे लौटनेमे कुछ विलम्ब हो तो आप चिन्ता न करे। मै उसे जल्दी नहीं लौटने दूँगा। कब तो आया है।

... मैने आपको एक लडकीकी बात कही थी। आप भूले न होंगे। पिछले दिनोंमे कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उठ आई कि मुझे उसकी विशेष चिंता करनी पड़ी। वह बाते मै आपको लिख नहीं सका, अब भी खुलकर लिख नही सकता। शायद बिहारीने आपको कुछ लिखा होगा! बिहारीको मै अपना पूरा दिल कैसे दे सकता हूँ? मालूम नहीं, बिहारीने क्या लिखा है—लेकिन मै तो अभी पूरी तौरसे हाँ कर नहीं सकता। उस लड़कीसे कुछ बातोमे मै बँध बैठा हूँ। वह मुझे न जाने किस ढँगसे देखने लगी है। वह समझती है, मै उसको अपनाऊँगा। या तो इस समझको मुझे अपनी ओरसे तोड़ना होगा, या नहीं तो किसी तरहसे उसीके दिलमेसे यह भाव निकाल देना होगा। पहली बात मुझसे न होगी, दूसरी बात मालूम नहीं कैसे होगी। लेकिन जबतक यह न होगी,—तबतक मै अपने हाथोंमें नहीं हूँ, और आप कुछ भी निश्चित न समझे।

...गरिमाको नमस्ते दे दे और बिपिनको प्यार।

आपका—सत्य"

जैसे मन उसका अस्थिर है वैसे ही उसकी बात भी डिगमिगाती होती है। दो-टूक कहना नहीं जानता। इस चिट्ठीके बाद भी उसका मन डाँवाडोल है, सोचता है,—देखे, बाबूजी क्या जवाब देते है। जैसे अपना निर्णय वह आप नहीं करना चाहता,—चाहता है दूसरे उसके लिये निर्णय करके दे दे। मन-भाया निर्णय दूसरे-से पाकर वह झट उसे मान लेगा। हमे बिहारीकी बात ही ठीक जँचती है। वह दूसरोकी ओट चाहता है, जिसमे कामका सारा उत्तरदायित्व वह उनपर फेक दे सके, और खुद अपने मनके सामने अपराधी बनकर खडे होनेसे बच जाय।

बिहारी नहरसे नहाकर आया है। अब वह कट्टोके निमत्रणपर जायगा। सत्य मन-ही-मन सोच रहा है—अगर बाबूजीने लिख दिया—'जो-चाहे-करो, मेरी और गरिमाकी चिंता न करो, गरिमाका इसी साल मै कहीं और व्याह कर दूँगा'—तो? तब तो मै कहींका नहीं रह जाऊँगा। यह ठीक नहीं होगा। लेकिन देखे तो बाबूजी क्या लिखते है।

सत्यको अब जमीनपर, और हिसाब-किताबके साथ, चलनेकी अकल सूझी है। अब वह चारों ओर ठोक-बजाकर, जाँच-पड़तालके बाद नफे-नुकसानकी सारी बातोका लेखा लगा चुकनेपर, आगे बढना चाहता है। अब उसे हठात् यह सूझ रहा है,—इधर क्या लाभ-हानि है, और उधर कितनी है, यह सब देख-भाल लेनेकी जरूरत है। इस आमद-खर्चेकी हिसाबी सूक्ष्म-बुद्धिपर चढकर जब वह तोलने बैठता है तो देखता है,—कट्टोकी ओर आमद नहीं, खर्च ही खर्च है। दूसरी तरफ़ आमदनीके कई मद्दे है, खर्च लगभग है ही नहीं। प्रतिष्ठा बढेगी, पैसा आयगा,

सुख भी मिलेगा, और भी बहुत कुछ। दूसरी तरफ़ सब कुछ खर्च होगा---मिलेगा क्या? यह नहीं कि सत्य खर्चसे चूकता है, पर अब वह खर्च लेखा देखकर करना चाहता है। आमदनी देख ले, तब दान देगा। बिना पड़ता बैठाये उत्सर्ग करनेसे, वह देखता है, कुछ हाथ नहीं आता।

ऊहापोहमे बहुत काल पड़े रहनेपर एक दिन जब यह काम-की बुद्धि सत्यमे पैठी तब देखा, वह अबतक कैसे बे-लाभ आदर्श-कल्पनाके वीरान मैदानमे फिरता रहा है। यह भी देखा कि बाबूजीको वह चिट्ठी लिख-चुका है, और सम्भव है तीर वापिस न आय। तो भी अभी आशा है, काम बिल्कुल नहीं बिगडा, देखे तो,---बाबूजी क्या लिखते है।

इस कुर्सीपर बैठा-बैठा सत्य कहाँका बहका कहाँ पहुँच गया है, नहरसे नहाया आता हुआ बिहारी इसकी बिल्कुल कल्पना न कर सकता था। वह अब कट्टोके यहाँ जा रहा है। उसने पूँछा---

"सत्य, चलो कट्टोके। वह खास तौरसे तुम्हे लानेको कह गई है।"

"मै नहीं जाता, तुम्हीं जाओ।"

"वह बिगड़ेगी मुझपर।"

"कह देना सिरमे दर्द है।"

"तब तो वह मुझे थाली-पर बैठा छोड़कर तुम्हारा सिर सँभालने दौड़ी आयगी।"

"कुछ कह देना, लेकिन मै जा नहीं सकता।"

"क्या बात .?"

"बात नहीं। लेकिन....यूँ ही।"

" अच्छी बात है।....सत्य, मै सोच ही रहा था, तुमसे कहूँ कि तुम न जाओ, मुझे अकेला ही जाने दो।"

" सो-ही-तो। .."

सत्य खुद पलट चुका है, फिर भी कोई कट्टोकी ओर खिंचे यह उसे चुभता है। इसी लिये वह इस बेढंगे, संक्षिप्त 'सो-ही-तो' के अलावा और कुछ न कह सका।

बिहारीने धोती फैलायी, बाल काढे, नयी कमीज पहनी, धोती भी दूसरी बारीक निकाल ली—यह सब सत्य देखता रहा। आज पहली बार सत्यको पता चला,—बिहारीके सभी कपड़े मुझसे अच्छे है, और बिहारी शकल-सूरतमे अच्छा लगता है। बिहारीने पैरोंमे स्लीपर डालकर कहा—

" चलता हूँ। तुम्हारे लिये माफी माँग लूँगा। लेकिन मै भाभीके विनाशके लिये जा रहा हूँ। आज भाभी अंतर्द्धान कर जायेगी, कट्टोका पुनरुद्भव होगा। भाभी, यह बिहारी आता है, आज तुम्हारा संहार करके, यह तुम्हें जगत्से लोप-विलोप-संलोप कर जायगा, और तुम्हारी जगह छोड़ जायगा एक आलुलायित-लोल-लोचन-कटाक्ष-संयुता, शुभ्रांबर-परिवेष्टिता, वैधव्य-विशेषण-युक्ता, जगदम्ब-स्वरूपा, मुक्तकेशी, सुहासिनी गँवारिणी!" यह कहकर उसने दोनों पैर जोड़े, 'एटेन्शन' खड़ा हो गया, और बोला—

" देखो, सत्य, मै भी कैसी साहित्यिक भाषा बोलकर अभिनय कर सकता हूँ।"

कौन बताये, इस अभिनयके खिलवाड़मे और साहित्यिक-व्यर्थताके आडबरमे बिहारी किस गहरी उमड़नको छिपा डालना चाहता था।

जब चलनेको मुड़ा तो आँखोंके कोनोंमे आई हुई दो नन्ही-सी खारी बूँदोंको उसने झटपट पोंछ डाला। बिहारी, तुम धन्य हो, जो, जब रोना आता है तो हँसकर दुनियाको धोखेमे डालकर तुम, बेजाने-बेदेखे, आँसू पोछनेका अवसर निकाल लेते हो! आह बिहारी, यह तुम्हारा बिहार दुनियाको भुलावेमें डाल दे, तुम्हे खुदको और इस लेखकको भुलावेमे नहीं डाल सकता। यह देखो, ज़ीनेसे उतरकर कोनेमे तुम बहुत-से मोती आँखोंसे डाल रहे हो। यह तुम्हारा लेखक तुम्हे देख रहा है और तुम्हे पढ रहा है।

*   *   *   *

जाओ, कट्टोके पास जाओ। वह तुम्हारे बहाने मास्टरका इन्तजार कर रही है।

२२

हँसते हुए बिहारी कट्टोके घरमे घुस गया । सामने ही कट्टोकी अम्माँ खाटपर बैठी है । वह कभी इस घरमें नहीं आया है, और अम्माँ उसे नहीं जानतीं ।

सीधे आकर बिहारीने कहा—“ अम्माँ मुझे जानती हो ? ”

अम्माँने देखा, एक अच्छे कपड़े पहने खूब अच्छा दिखनेवाला युवा सामने हँसता हुआ खड़ा है ।

“ नहीं तो बेटा ! ”

“ अच्छा बताता हूँ,—पहले पैर छू लेने दो । ” कहकर पैर छुए और उसी खाटपर अम्माँके पास बैठ गया ।

“ अम्माँ, मै सत्यके यहाँ आया हूँ । कल आया था,—दिल्लीसे ।

“ दिल्लीसे ?—”

“ हाँ, अम्माँ । ”

“ दिल्लीमे तो सत्य ...”

“ हाँ-हाँ वहींसे । ”

“ बड़ा अच्छा आया तू । सत्य तो...”

“ अम्माँ, मै रोटी खाने आया हूँ । कट्टो कल मुझे न्यौता दे आई है । ”

“ तू कट्टोको कैसे जान गया ? ”

“ उसके मास्टरसाहबसे जान गया हूँ । ”

" सो वह तुझे न्यौता देकर आई थी ? तभी तो सवेरेसे लगी है।"

" सो बात नहीं, अम्माँ। लग तो मास्टरजीकी वहजसे रही है। उन्हे भी न्यौता था। पर वह तो आये नहीं,—आ नहीं सके। अब मै ही दोनोंके बदलेका खाऊँगा।"

" है कट्टो बड़ी अच्छी। उसने मेरे मनकी बात की। पहले तो तेरा हमारे ही यहाँ हक है।"

" कट्टोकी अम्माँ, कट्टोकी तारीफ़ इस बिहारीके सामने न करो। नहीं तो वह शुरू करेगा तो रात-दिन एक कर देगा। तुम नहीं सुन सकोगी,—इसी लिये वह चुप है।"

" जा भाई, जा। उधर है चौका।....कट्टो, देख तेरे मेहमान आये है।"

" कौन है?"—जानती है, फिर भी पूँछनेके लिये कट्टोने पूँछा।

चौकेमे कदम रखते हुए बिहारीने कहा—

" दासानुदास बिहारीदास!"

" वह नहीं आये?"

बिहारी शैतान है, उसने पूँछा—" कौन?"

कट्टो झेपी,—चुप।

बिहारीने यहाँ सत्यको गाली दे डालनेकी इच्छा की।

" नहीं...."

स्वरमे भारी निराशा भरके कहा—" क्यों....?"

" यो ही, कुछ काम जरूरी लग गया, आ नहीं सके। कहा है—मेरे लिये माफ़ी माँग लेना।"

" तबीयत तो कुछ खराब नहीं है?"

" बिल्कुल नहीं....।"

आज बहुत-बहुत सी चीजे बनाई गई है। उस दिन कैसा खाना नहीं है,—गिनतीमे ७-८ चीजे होगी। आज पहले-ही-से दो पटड़े रक्खे है, पानी भरा रक्खा है,—सब काम ठीक है। लेकिन आज खाने-वाला बिहारी ही है,—और कोई नहीं है। मास्टरको सिर्फ़ एक ही दफ़े खिला सकी है,—तब, जब कि उन्हे अपना पटड़ा खुद बिछाना पड़ा था और अपना पानी आप ओड़ लेना पड़ा था। यह कैसा दुर्दैव है!

पर यह बिहारी उसे दुर्दैवकी चिंतामे पड़े रहनेके लिये खाली नहीं छोड़ेगा। आते ही बातचीतका सिलसिला छेड़ दिया है, और कट्टोकी दुर्दैवकी याद भागती जा रही है।

खाते-खाते बिहारीने कहा—

"भाभी,—ऊँह, भाभी मै तुम्हे नहीं कहना चाहता। तुम बार-बार लजाती जो हो। हमारा-तुम्हारा एक और रिश्ता भी है—बताऊँ?"

कट्टोने देखा यह 'भाभी' कहकर शुरू करनेवाला बिहारी बड़ा दुर्घट जीव है,—न जाने अब कैसा मजाक करनेवाला है। वह व्यस्ततासे अपने रोटीके काममे लग गई,—जैसे बिहारीकी बकवासपर उसे ध्यान देनेकी फुर्सत नहीं है।

"वह फिर बताऊँगा। उसे सुननेके लिये तुम्हे तैयारी करनी पड़ेगी। अब तो 'कट्टो' कहना चाहता हूँ।...ऐ, यो चौको नहीं। 'कट्टो' कोई बुरी बात नहीं है।"

"तुम नहीं कह सकते कुछ मुझको!"

"मेरा रिश्ता सुनोगी, तो समझोगी, कट्टो, मै कह सकता हूँ।"

कट्टो अब झगड़ पड़नेको तैयार है। यह निर्दय उद्धत व्यक्ति आति-थ्यका दुर्लभ उठाता है! जैसे कट्टो बिल्कुल ही बच्ची है!

"तुम कुछ नहीं कह सकते,—समझे?"

बात कहीं-की-कहीं जा पड़ी है। अपनेको बिल्कुल खोलकर रख-देनेसे ही अब वह मोड़ी जा सकती है। नहीं तो समझो. बिहारीका आजन्म-निर्वासन हो जायगा। कट्टोकी उपस्थितिमे फिर वह कभी प्रवेश नहीं पा सकेगा। यह सब बिहारी तुरंत समझ गया। उसने कहा—

"तुम बिहारीको नहीं समझतीं। अगर उसने तुम्हे जरा भी दुःख पहुँचाया है तो उस जैसा अभागा व्यक्ति दुनियामे कोई नहीं। वह तुमसे क्षमा चाहता है। उसकी बात सुनोगी तो उसपर बिगड़ न सकोगी। और जितनी जल्दी सुन लोगी उतना ही अच्छा होगा। विश्वास रक्खो, तुम्हे तनिक दुःख पहुँचानेसे पहिले वह मर जायगा। तुम क्या समझती हो, वह भूत उतारनेके लिये यहाँ आया है?"

"बिहारी बाबू, मै कुछ नहीं जानती। पर मुझसे मजाक मत करो।"

"नहीं करूँगा। पर रोकर रोनेसे हँसकर रोना अच्छा है। इसी लिये मजाक करता हूँ,—क्यों कि भीतरसे रो रहा हूँ और तुम्हे रुला-नेकी तैयारी कर रहा हूँ।"

"मुझे तुम्हारी बात समझ नहीं आती। डर लगता है।"

"खानेसे निबटकर सब कहूँगा। अभी तो एक रोटी दे दो, और वह साग, .वह नहीं, आलूका।"

फिर कोई कुछ नहीं बोला। खाना खाकर उठा तो पूँछा—"अपनी बात अब कह सकूँगा?"

"चौकेसे निबट लूँ, तब। जाओ नहीं, अम्माँके पास बैठो।" फिर थोड़ी देर रुककर कहा "बिहारी बाबू, तुम कोई हो, बड़े भले आदमी हो। इस बारेमे मै अब कभी भूल नहीं करूँगी। कोई अपराध बन गया हो तो भूल जाना। मै, देखो, गँवारिन हूँ।"

बिहारी ऐसी आत्मपीड़नसे भरी क्षमा-आशाके सामने बिल्कुल न ठैर सका।

" अम्माँके पास बैठता हूँ, तभी जाऊँगा। "

चौकेसे बाहर होते ही ' अम्माँ-अम्माँ ! ' धूम मचाता-हुआ बिहारी चला अम्माँके पास।

" खा लिया रे ? "

" इतनी चीज़े बनाईं, अम्माँ, कि खाते-खाते सब नहीं खा सका। सबको चखते-चखते ही पेट दूना भर गया। अब तो, अम्माँ, लेटे बग़ैर गुजारा न होगा,—पेट जवाब दे देगा। "

अम्माँने अपनी खाट छोड़ पीढा सँभाला, कहा—

" धूप आ गई है, खाट वहाँ जामनकी छाँहमे कर ले, और नेक सो जा।"

वह लेट गया। पेड़पर अधपकी जामन लग रहीं है। देखते-देखते बिहारीके सिरपर कट्टसे एक जामन पड़ी।

" अम्माँ, तुम्हारे घरमे यों आकाशसे बम्बके गोले गिरते रहेगे, तो-तो मै यहींका हो रहूँगा। घर भी नहीं पहुँच पाऊँगा। "

" अरे, रो मत, सो जा। मर नहीं जानेका, जा, मै कहती हूँ। दिल्लीमे भी मिला है कभी तुझे ऐसे सोनेको ? वहाँ तो चाहे इसके लिये तरसता ही हो ! "

" जाने दो, मेरा क्या, मै तो सोये जाता हूँ। मेरा सिर फूट गया तो दूसरा अम्माँको ही देना होगा। "

" हाँ-हाँ, दे देगे। सो-तू-अब। "

बिहारी, जामनके तले, माँके प्यारकी छाँहमे, कट्टोके इस गँवई स्वर्ग-गृहके आँगनमें आँख मींचकर सो गया।

२३

कष्टोंके तेलसे गीले-हो-रहे आले-वाले कमरेमें।

" मै दिल्लीसे सत्यके लिये विवाह-प्रस्ताव लेकर आया हूँ।

" तो—? "

" तो तुम्हे इससे कुछ मतलब नहीं ?"

" कुछ नहीं।"

" तुमने गरिमाका नाम सुना है ? "

" नहीं। "

" मै उसका भाई हूँ।

" अच्छा।..."

" अभी जो थोड़े ही दिन हुए सत्य गया था तो हमारे ही साथ गया था।"

"हूँ।...."

" मै वहाँसे विवाहकी बात पक्की करने आया हूँ।"

" पक्की हो गयी ? "

" बिल्कुल तो नहीं। लेकिन—"

" झूठ बोलते हो। "

" झूठ क्या ? "

" यही कि विवाहकी बात पक्की हो गई। तुम वृथा आये हो। विवाहकी बात पक्की नहीं कर सकोगे।"

" यह तुम कैसे कहती हो ? "

" मै कहती हूँ। "

" लेकिन तुम भूलमें हो तो ? "

" नहीं हो सकती। "

" हो तो—?"

" हो नही सकती। "

इतना विश्वास ! हाय, क्या सत्य इसके योग्य है ? क्या सत्य ऐसे निश्चल विश्वासके साथ खेल करने चला है ? ऐसे स्वर्गीय विश्वासको फुसलाकर फिर उसके साथ छल करेगा ?

आह !—इस कट्टोपर वह छल फूटेगा तो क्या हाल होगा !

बिहारी बोला—" परमात्मा करे मै झूँठ बोल रहा हूँ। माल्ूम होता है, सत्य असमजसमे है। वह शायद मेरी बहनके साथ ही शादी करनेको लाचार हो। मुझे यही दीखता है। "

" ———— ? "

" लेकिन माल्ूम होता है, वह बंधनमे है। तुम उसे खोल सकती हो।"

" ओह, क्या कहते हो ? मेरा बंधन !—मेरा कैसा बंधन ! ! मैने कब-क्या बाँधा है जो खोल सकूँ ? मै क्या बाँध रखने लायक हूँ ? लेकिन यह सब तुम क्या कह रहे हो ? जानते हो, यह उससे कह रहे हो जिसके लिये ये बाते कही-न-कही सब बराबर है। "

" मैने सत्यसे पूँछा है। बातें की हैं। उसने सारी बातें मुझसे खोल कर कह दी है। अगर उसे अपनी बातका ख्याल न हो, तो उसकी खुशी मै जानता हूँ, किधर है। "

" उनकी खुशीके लिये मेरा तन ले लो। पर मुझसे ऐसी बातें न करो। "

बिहारी यह किसे मनाने चला है, जो बिना शर्त, बिना कारण सुने, बिना माँगे सब-कुछ दे डालनेको,—सब कुछ मान लेनेको—पहिलेहीसे तैयार है। फिर भी तफसील देना, सफाई देना, मानों काटकर फिर उसे नमकसे भरनेका प्रयत्न करना है। लेकिन बिहारी कह ही रहा है—

" सत्यका उतना दोष नहीं है। वह अपनी बात पूरी करे तो उसकी माँ मर जायगी। उस . "

कट्टो निरपेक्ष,—चुप।

" उसकी क्या प्रतिष्ठा रह जायगी ? लोक क्या कहेगे ? "

कट्टो चुप,—सुन्न।

" मेरे बाबूजीसे उसे ऊँचे लोगोसे सम्बन्ध और पैसेकी सुविधा प्राप्त होगी। तुमसे ...? "

कट्टो सुन्न,—मूर्तिवत्।

" मेरी बहिन खूब पढी है। अँग्रेजी जानती है, और बड़ी-बड़ी बाते जानती है। तुम...? "

कट्टो मूर्ति-सरीखी,—जडवत्।

" मेरी बहिन उसे खूब सुख पहुँचा सकेगी। तुमसे उसे संतोष नहीं प्राप्त होगा। . उसे खोल क्यों नहीं देतीं ? "

कट्टो जड़वत्,—अचेत।

बिहारी कहे जा रहा है—

" सत्यकी माँ, सत्यकी बड़ाई, सुख, प्रतिष्ठा, संतोष और सत्यकी भलाई...."

कट्टो, देखो, अचेत मूर्च्छित होकर गिरी जा रही है।

बिहारीने झट-से सँभाल लिया। सत्यपर उसे बड़ा गुस्सा आ रहा है। सत्य यहाँ होता तो उसका सिर पकड़कर इस कट्टोके पैरोंके पास

धूलमें—धूलमें इतना घिसता कि बाल सारे उड़ जाते। हाय, कम्बख्त, स्वर्गके इस अछूते पारिजातकी गंधको जूठा करके छोड़े जा रहा है!

कट्टोको खाटपर लिटा दिया। कुछ उपचारसे होश आया। कट्टोने जगकर देखा,—बिहारी शुश्रूषामे लगा है।

“ बिहारी बाबू, आप जाओ। उनसे कह देना कि अपने कामोंमें कट्टोकी गिनती न करे। मेरे पीछे उन्हे थोड़ी-भी चिंता भुगतनी पड़ी तो मै अपनेको क्षमा न कर सकूँगी। मै क्या रही, जो मेरे पीछे उन्होने दुख भुगता! न हो, तो मैं ही उनसे कहूँगी। कहूँगी—अपनी कट्टोपर इतना एहसानका बोझ न डालो,—मुझसे उठाया न जायगा, मै उसके नीचे सदा दुखी रहूँगी। इससे मेरी गिन्ती छोड़ दो। तुम्हारे सुखसे ज्यादे मुझे और कुछ नहीं चाहिये। उसीको नष्ट कर दूँगी तो कहींकी न रहूँगी।....बिहारी बाबू, आप जाओ। बड़ा कष्ट पहुँचाया आपको। पर कट्टो बड़ी सुखी है। बहुत दिनोंके बाद आज मालूम होता है वह कुछ दे सकेगी जो उनकी खुशीकी राह खोल दे। बड़ा सौभाग्य है कि आखिर मै उनके किसी काम आऊँगी। उनसे कहना कट्टोपर विश्वास रक्खें, वह उनकी बड़ी ऋणी है। नहीं, मैं ही कहूँगी। ”

बिहारीने कहा—

“ दुनियामे सभी सत्य नहीं है, बिहारी भी है। तुम्हारी तरह पुरुष भी है जो बिना लिये दे सकते हैं। ”

“ नहीं, सभी उन जैसे नहीं हो सकते। वह जो करेंगे, ठीक करेगे। और ठीक करनेमें अपनेको बचायेंगे नहीं। देने-लेनेका कुछ सवाल नहीं है। ”

“ लेकिन।....”

“ नहीं, तुम उन्हें नहीं समझ सकते। ”

इस तरह कहकर बिहारी चुप खड़ा रह गया। इस लड़कीका विश्वास, जो अब गड़कर हिलनेका नाम नहीं लेगा, चाहे प्रलय आ जाय, चाहे हिमालय ढह पड़े, जो अटल, अडिग खड़ा रहेगा--हो जो होना हो--- इस विश्वासको देखकर वह स्तंभित रह गया। कुछ देर चुप रहकर बोला---

"परमात्मासे मै बात नहीं करता। करूँगा तो तुमसे करूँगा। क्या तुम्हे अब कट्टो भी नहीं कह सकता?"

"अब जो चाहे सो कहो। ...कट्टो ही ठीक है।" फिर हिचक कर कहा---"नहीं ठैरो, पहिले उनसे मिलना होगा।"

"कुछ कहो, अब मिलूँगा तो कट्टो ही कहूँगा, और तुम नाराज न हो सकोगी। बिहारीसे नाराज होगी तो वह मना छोड़ेगा। अब जाता हूँ।"

"जाओ, पर उनसे कुछ न कहना। मै ही आऊँगी।"

बिहारी विस्मय, विक्षोभ लेकर चला गया।

२४

सत्यको बाबूजीके पत्रकी प्रतीक्षा है, इसलिये बिहारीको नहीं जाने देता। बिहारीको भी बाबूजीके पत्रकी प्रतीक्षा है इसीलिये वह ठैर रहा है।

एक ही डाकसे दोनो पत्र आये। सत्यने अपनी डाकमेंसे बिहारीका पत्र उसे निकाल कर दिया, उसकी तरफ बडी शंकासे देखा।

सत्यने अपना पत्र भी उतावले-काँपते मनसे अकेलेमे खोला। पढा—

"बेटा सत्य, तुम्हारा खत मिला। तुम समझदार हो, अपने लिये आप तै कर सकते हो। अगर तुम उस लड़कीका भला चाहते हो तो मै कैसे भी मने नहीं कर सकता। गरिमाके लिये दूसरा वर ढूँढनेमे मुझे बहुत दिक्कत नहीं होगी,—उस ओरसे निश्चिन्त रहो। लेकिन होगी यह एक बात दुःखकी। क्या मै बताऊँ कि इस संबधपर ज्यादे जोर मै तुम्हारे ही कारण देता रहा हूँ। तुम्हे, न जाने क्यों, बेटा मानने लगा हूँ। वैसी-ही मुहब्बत करता हूँ। मेरा कुछ नहीं, पर ऐसा होगा तो तुम्हे बड़ा नुकसान होगा। उसीका ख्याल है। तुमपर तो अब भी मैं दया करना चाहता हूँ—मुहब्बत करना चाहता हूँ,—तुम उधर फँस बैठे हो तो जाने दो। खुशी है कि इसमे मेरा कुसूर नहीं, अपने अलाभके लिये अपनेको ही धन्यवाद दे सकोगे।

सत्य, मैने उमर यों ही नहीं खोई। कुछ दुनिया भी जानी है। दुनिया मोमकी चीज़ नहीं, और न किताब ही है जिसे पढकर खतम

कर सकते हो। यहाँ जगह-जगह टक्कर खाना पडता है और समझौता करना पड़ता है। जीवन दायित्वका खेल है, पग-पग-पर समझौता है। जो मन नहीं मार सकता, जिसे झुकना और छोटा बनना नहीं आता जिसे दूसरोंकी सुविधा और एक दूसरेको निभाने (accommodate करने) की दृष्टिसे झुकना और राह छोडना नहीं आता,—वह जिंदगीमे कभी कुछ नही कमा पाता। जिंदगीका सतोप भी नहीं। सत्य, तुम्हे यह सीखनेकी आवश्यकता है। कोई यहाँ नितात स्वतन्त्र, नितान्त एकाकी नहीं है,—जो ऐसा समझता है वह दायित्वसे डरता है और कापुरुष है। सब कुछ उत्तरदायित्वोंसे बँधे हुए है। उन्हे जंजाल समझो, कर्तव्य समझो,—लेकिन उनमेंसे भाग निकल छूटना न चाहो। क्यो कि भाग छूटकर देखोगे कि तुमने जीवनको रेगिस्तान बना लिया है।

सत्य, इस वक्त तुम झमेलेमे हो। मालूम होता है, प्रेमको जीवनमे ठीक स्थान अभी नहीं दे पाये हो,—इसीसे दिक्कत उठा रहे हो। क्या तुम उस लड़कीसे प्रेम करते हो ?—मै ऐसा ही समझता हूँ। प्रेम जो कब्जा चाहता है,—वैसे प्रेमकी छूट समाजके लिये अनिष्टकर है। प्रेममे यदि इस आधिपत्यकी आकाक्षा है,—यह कि वह मेरी है, मेरी ही है, मेरी हो जाय,—तो इस प्रेममे, विश्वास रक्खो गँदलापन है। स्वच्छ और वास्तव प्रेम इस प्रकारकी आधिपत्य-आकांक्षासे कुछ सम्बन्ध नहीं रखता है। 'उस'की प्रसन्नता, उसका सुख, उसके सतोपकी ओर सचेष्ट रहता है,—उसपर क़ब्जा कर लेना नहीं चाहता।

अब विवाह क्या है ? विवाह बिल्कुल एक सामाजिक समस्या है, सामाजिक तत्त्व है। तुम भूलते हो, अगर तुम उसे और कुछ समझो। उन कुछ उत्तरदायित्वोंसे, जो जीवनके साथ बँधे हैं, उऋण होनेके लिये

यह विवाहका विधान है। दुनियामे क्या करना है, उसकी दृष्टिसे लाभ-पूर्ण क्या होगा क्या नहीं, कुटुम्बियोंकी प्रसन्नता किस ओर है, और अपना स्वार्थ किस ओर है,—ये सभी बातें देखनेकी है। ये सभी बाते विवाहके प्रश्नमे सश्लिष्ट है । स्वार्थ शब्दसे घबड़ाओ नहीं। देखोगे तो परमार्थ शुद्ध स्वार्थ है। लेकिन मै कहता हूँ, शब्दसे मत डरो—तथ्य देखो और वास्तविकताको पहचानो।

तुम प्रसन्न होगे। जो करो उसमे मेरा आशीर्वाद समझो। मै तुम्हारा सदा भला चाहता हूँ। तुम्हारा विवाह कब होगा–लिखना। गरिमाके विवाहमे वैसे आओगे तो जरूर? अब मै उसे कबतक टालूँ?—इस सालमे कर ही दूँगा। गरिमा तुम्हे नमस्ते कहती है, विपिन नमस्कार।

मेरे उपदेशपर नाराज न होना। चाहोगे तो यह तुम्हे बहुत मदद दे सकेगा। मैने समझा, तुम ऐसी खरी और कठिन बाते सुननेकी जरूरतमें हो।—इसी लिये लिख दीं।

तुम्हारा–भगवद्दयाल"

बिहारीको यह पत्र लिखा गया था:—

"बिहारी, जानते हो तुम्हारे पत्रके साथ सत्यका भी एक खत मिला था! तुमने लिखा था वह सँभल गया है, लेकिन वह सँभलके मार्गपर आ-कर अभी बिदक रहा है। पर मै साफ़ देख रहा हूँ—आयेगा आखिर वह उसी राहपर। तुम उससे कुछ मत कहो। एक बार इधरसे आशाका तार टूटा कि वह बेसहारा हो जायगा। तब उसे मेरे पास आये ही सरेगा। नही आयेगा तो यह भी ठीक होगा। तब उसे कठिन, ठोस, बे-मुरव्वत दुनियाके सामने पड़ जाना होगा। और यह बुरी बात नहीं

होगी। मै जो समझाकर कहताहूँ, दुनियासे वही थप्पड़ खाकर सीखेगा। बिहारी, मै देखता हूँ, वह तेरे जैसा बिहारी नहीं है। वह मेरे जैसा सम्भ्रान्त, सभ्य, पैसे और प्रतिष्ठासे सुभीतेवाला आदमी नहीं बनेगा तो मुश्किलमे ही रहेगा। झोंपड़ीमे रहकर या आवारा रहकर जीवनकी पूरी तुष्टि पा लेना उसके बसका काम नहीं है।

तुम उसपर बिल्कुल जोर न दो—आ जाओ। अगर इस विवाहके टलनेका मुझे दुःख होगा तो सत्यके ही खातिर—गरिमाके कारण नहीं।

बाकी यहाँ सब ठीक है।

तुम्हारा—बाबू"

२५

सत्यको इस खतकी एक एक बात मान्य होने लगी। कट्टोको वह प्यार करता था,—यह वह अब मान लेनेको तैयार है। इस प्रेमके ही कारण वह उसकी रक्षा करना चाहता था और अपनी बना लेना चाहता था। जहाँ यह अपनी बना लेनेकी कामना है,—वह प्रेम उपादेय नहीं है। अब इसमे सत्यको संशय नहीं रहा।

फिर दूसरी भी तो बात है। प्रेम जीवनको बहलानेकी वस्तु तो बन सकती है, लेकिन जीवन उसके लिये स्वाहा नहीं किया जा सकता। जीवन तो दायित्व है, और विवाह वास्तवमें उसकी पूर्णताकी राह, उसकी शर्त्त। इस दायित्वसे एक ख्याल,—एक भावना—में बहककर कैसे छुट्टी पाई जा सकती है? प्रेमको इस दायित्व-पूर्ण विवाहकी बातमे कैसे दखल देने दिया जाय? जीवन, प्रेमसे ज्यादे महत्त्वकी, ज्यादे ऊँची और पवित्र चीज है। प्रेम,—जो अंतमे केवल एक आवेश, एक भाव है, उसपर जीवन कैसे निछावर कर दिया जाय? वकील साहबकी यह बात उसे स्पष्ट, अमिट सत्यकी नाई लग रही है। मानों वह जिस आधारभूत जीवन-सिद्धांतपर पहुँचनेका अबतक प्रयत्न कर रहा था, वह जगह जहाँ पैर टिके, और जहाँ पक्की नींव बाँधकर जीवन खड़ा किया जा सके,—वह मानों उसे मिल गया। अब उसके बारेमे भूल नहीं करेगा। अब उसे साफ दीख रहा है,—अबतक जिन बातोंको ठीक समझकर वह अपनेसे चिपटाता था, वह कोरे शब्द थे, कोरे भाव। उनपर

दुनिया नहीं टिक रही है। जो वकील साहबने लिखा,—वह है जिसको केन्द्र मानकर दुनिया चल रही है, और व्यक्तिको चलना चाहिये। जीवन एक दायित्व है,—कैसी सुदर बात है, कैसी अच्छी लगती है। और वह दायित्व है किसके प्रति?—संसारके प्रति, संसारकी उन्नतिके प्रति।

बिहारी होता तो कहता—"—अपने प्रति, अपने अतःकरणके प्रति।" विनोदशील बिहारी और विचारशील सत्यमे यही अंतर है।

लेकिन सत्यके लिये पत्रके उत्तर-पैराग्राफ तो ठीक है, पहला गड़बड़ है। यह बात उसके अहंभावको चुटकियाँ ले रही है कि यह विवाह उलट गया तो उसकी ही मुश्किल है, गरिमाकी नहीं,—यह कि उसीपर दयाकर वह अबतक इस संबंधपर जोर दे रहे थे। लेकिन सोचता है तो बात ठीक ही है। गरिमाको, जब-चाहो तब, उससे हर हालतमे अच्छा वर प्राप्त हो सकता है, और उसके बिना वकील साहबके जीवनमे कोई अभाव, कोई अपूर्णता नहीं पैदा होती। जब कि इधर तो सत्यके लिये आगे कुछ दीखनेका मार्ग ही बंद हो जाता है।

पर, बिल्कुल निराश हो बैठनेकी अभी बात नहीं है।

वह कमरेमें आया। बिहारी वहीं बैठा है। बाबूजीका पत्र पाकर सत्यके प्रति उसका आदर बढ गया है। उस पत्रसे बिहारीने देखा कि सत्य अब भी अपनेसे झगड़ रहा है, हार मान नहीं बैठा। और यह अपने आपसे बराबर लड़ते रहना ही तो जीवनमे एक कीमती चीज है।

लेकिन बिहारीको यह नहीं मालूम कि सत्य हारको हार नहीं मान रहा, वह लड़ाईसे विमुख होकर, इस कीमती लड़ाईको बिल्कुल व्यर्थ चीज़ ठैराकर, उसे स्वीकार कर रहा है।

बिहारीने कहा—" आओ, भाई सत्य, मेरा धन्यवाद लो।"

" धन्यवाद कैसा ?"

" पता चला है कि मुझसे कहनेके बाद भी तुम कट्टोके बारेमें बिल्कुल लापर्वाह नहीं बन चुके थे।"

" हाँ, बाबूजीको कुछ ऐसा-ही लिखा था। लेकिन।...."

" लेकिन ?...."

" लेकिन जीवन एक दायित्व है। .."

" फिर ?"

" और....और प्रेम एक अस्थायी भावना। जीवनके स्थायित्वको अस्थायी भावनाओंका आधार नहीं काम देगा।"

" सीधी-सादी हिन्दी भी क्या काम नहीं देगी ? भई, ऐसे तो बात करो जो यह बिहारी भी समझ जाय! जीवनका स्थायित्व कैसा ?— क्या जीवन स्थायी चीज है, यानी संसारमे बिताये जानेवाले ये पचास-साठ-सौ साल ?—स्थायित्व-परिभाषाकी हद क्या सौके अंक तक है ?"

" ग़लत मत समझो। जीवन स्थायी है, उसे एक दिशाकी ओर ही बढते रहना चाहिये,—यही उसका स्थायित्व है।"

"....और यही आपका पांडित्य है!"

" बिहारी, तुम यह नहीं समझते, इसमे मेरा क्या दोष ? अपनेको टटोलता हूँ तो देखता हूँ कि कट्टोकी ओर मै उस भावसे खिंच रहा हूँ— जिसे प्यार कहा जाता है। यह प्रेम एक भाव है, और भाव पैदा होने और मिटनेके लिये होता है। अर्थात् यह क्षणस्थायी है। अब विवाह एक टिकनेवाला सत्य है। दायित्वका अंश है। प्रेमको उसमें दख़ल देने देना ठीक नहीं होगा।"

" और सब कामोंमें बहुत ज्यादे अकलको भी दख़ल देने देना ठीक नहीं होगा। तो आपने इतने दिनोंमें यह उधेड़-बुन की है। और आपको मालूम है, इन दिनों आपकी कट्टो क्या करती रही है ? वह आपको ध्याती रही है, और आपको मन-ही-मन परमात्मा बनाती रही है।"

" लेकिन मै क्या करूँ ? प्रेममे जहाँ कब्जेकी इच्छा है, वहाँ गँदलापन है। क्या इस गँदलेपनको सिरपर चढ़ा दूँ ?"

" नहीं-जी, सो क्यों ? विशुद्ध विशुद्धताको सिरपर चढ़ाओ। वह विशुद्धता क्या है, जानूँ तो।"

" जिस बातको मानकर दुनिया खड़ी है, जिस दुनियाकी कीलीको हम और तुम नहीं बदल सकते, उसको हिलानेकी कोशिश करनेके बजाय हम मजबूत करनेमे सचेष्ट हो तो ज्यादे कार्यकर हो सकता है। और वह आधार-भूत तत्त्वकी बात यह है कि कोई नितात स्वतंत्र नहीं है, सब ही उत्तरदायित्वोंमे बँधे हुए है, उन्हींमे उनकी मोक्ष और कृतार्थता है।"

" बहुत-ठीक। तो आपके जीवनका एक उत्तरदायित्व है गरिमाका पति होना। बहुत सुंदर,—और आगे ?"

" बिहारी, तुमने अभी दुनियापर हँसना ही सीखा है। इसमें कुछ नही लगता। पर उसे समझना मुश्किल है। सो तुम्हे बाकी है।"

" ओ-हो, एक ही क्षणमे आप दुनियाको समझ बैठे। ऐसी दुनियाकी समझ आपको मुबारिक। और उस समयके बाद रोना मुबारिक। मुझे तो परमात्मा मेरा हँसना ही दिये रक्खे।"

" बिहारी, तुम अभी नहीं समझोगे। जाने दो।"

" ठीक है, आप समझ गये ! ऐसे विशाल गहन तत्त्वकी बात बिहारीके इस हल्के-से हँसोड़ दिमाग़में नहीं आयेगी। लेकिन अब बताइये—क्या ठीक रहता है ? क्यों कि दुर्भाग्य कहो या सौभाग्य,—या दोनों ही,—वह आपकी दायित्व-परिणीता गरिमाका भाई है। और आपके निर्णयको सुनकर घर पहुँचानेका कर्तव्य उसपर आ पड़ा है। "

" बिहारी, बाबूजीकी जो इच्छा है, माँ जिसके लिये कबसे ज़ोर दे रहीं है, जिसमें तुम भी और गरिमा भी शायद हृदयसे सहमत हैं,—उसे मै नहीं टालूँगा। बड़ोंकी बात मानूँगा—उनका आशीर्वाद खो न सकूँगा। "

" शुभमस्तु।....लेकिन बिहारी श्रीसत्यधनजीको एक सूचना देना चाहता है। कट्टो उनसे मिलने आया चाहती है। "

खिड़कीमेंसे कट्टोको आते बिहारीने देख लिया है।

" एक निवेदन और है, " बिहारीने कहना जारी रक्खा " कट्टोकी संस्कृत-शिक्षा अगाध नहीं है। उसने अभी विश्वकी फ़िलासफ़ी भी नहीं पढ़ी है। इससे उसके सामने श्रीसत्यधनजी संस्कृत-फ़िलासफ़ी ज्यादे न छौंके। कहीं वह समझ न सके और उन्हें परमात्मासे भी ऊँचा मानने लग जाय। कट्टोकी ज़रा भी पर्वाह करते होंगे, तो विश्वास है, सत्यजी मेरा अनुरोध टालेंगे नहीं। "

तभी कट्टो दर्वाजेमे आई—

२६

कट्टो दर्वाजेमे आई—बिहारी चलने लगा।

" नहीं,—जाओ नहीं।" कहकर कट्टो सत्यसे कुछ हाथके फासले-पर खड़ी हो गई।

सत्यपर उसकी आँखे पड़ रही हैं। उनमें कैसा भाव है। जैसे एक अकिंचन अनुग्रहीता किंकरी उनकी पदधूलिकी भीख लेने आई है,—बस और कुछ नहीं।

" तुमने इनका परिचय मुझे क्यों नहीं बताया ?"—कट्टोने सत्यसे कहा।

" बताया तो ..."

कट्टोने शरारत-भरी, मीठी-सी, हलकी-सी एक हँसी हँसकर कहा—

" किस कामके लिये आये; सो तो....।"

इस समय सत्यको फिलासफीके टेकनकी बहुत सख्त जरूरत है। क्यो कि मन गिरता जा रहा है, और उसे इसी टेकनपर टिका-कर सतर रखना होगा। अच्छी तरह इस तत्त्वज्ञानकी टेकनीको जमा-जमू कर उसने कहा—

" सो तो बिहारीने खुद ही कहनेका जिम्मा ले लिया था।"

कट्टोको मास्टरका यह पक्का-पन बड़ा अच्छा लग रहा है।—

" सो इन्होने ही तो घर आकर सब बताया।"

अब सब चुप ।

फिर एक दम, भंगमें रंगकी तरह, उखड़ती सभामें मीठी तानकी तरह, जब प्रलयकी आशंका है तब हलकी-सी बयारकी तरह, जो लड़नेके साजो-सामान ठीक कर रहा है उसके सामने विनीत क्षमा-याचनाकी तरह, जहाँसे ज्वाला चाहिये वहाँसे ठंडी-फुहारके फूट पड़नेकी तरह, ये शब्द कट्टोने कह डाले—

" तो हमारी जीजीको कब लाओगे ? "

इस कल्पनातीत बात—इस अनोखे दाव—के आगे, तत्वज्ञताकी सुसन्नद्ध शब्द-सेनाके रहते भी, सत्य सिट्टी भूल गये । चुप रहे,—कुछ उत्तर न बन पड़ा ।

" बोलो, कब आयेगी,—हमारी जीजी ? "

धीरे-धीरे अपनी पक्षकी प्रबलताका भान इन्हे हो आया । इच्छा शक्ति—' विल 'को कर्रा किया, हँसकर बोले—

" तुम चाहती हो, मै जीजी लाऊँ ? "

" वाह, नहीं चाहती ? जो तुम चाहते हो, सो सब चाहती हूँ । मेरा परमात्मा जाने । "

इस अबोध प्रतिपक्षीके आगे जोर लगाकर तैयार की हुई सत्यकी सेना कुछ काम नहीं दे सकेगी । सत्य फिर जैसे खो गये, जैसे वह टेकनी मनके नीचेसे खिसकने लगी, और मन धँसकने लगा ।

" इन बिहारी बाबूने मुझसे कहा था, तुम्हे मेरी जरूरत पड़ गई है । भला मै सोच सकती थी, कभी मेरी भी जरूरत पड़ जायगी ! अब हाजिर हो गई हूँ । बोलो, सामने खड़ी हूँ । मै तो तुम्हारी ही हूँ ।

मुझसे बोलते, मुझसे माँगते डरते हो? जैसे परायेसे कुछ माँग रहे हो? छि:,—सो नहीं।....तुम्हारे काम नहीं आई, तो हुई ही क्या?"

बोले जाओ कट्टो, मास्टरजीकी जुबान ऊपर तालूसे सटी हुई अचरजसे तुम्हारी सब बात सुन रही है, पर डरके मारे हिल नहीं सकती।

"जो कुछ भी तुम चाहते हो,—सबमे कट्टोकी खूब राय है। कट्टो भी उसे खूब चाहती है। उसका पूरा-पूरा विश्वास रक्खो। तुम्हारी खुशीमे उसकी खुशी है। तुम्हारे सोचमे उसकी मौत है। अपने कामोंमे कट्टोकी गिनती मत करो,—वह गिनने लायक नहीं है। उसकी खुशी तुममे ही शामिल है। बस। तुम ब्याह करना चाहते हो, तो कट्टो तुम्हारी सबसे पहिले तुम्हारा ब्याह चाहती है। ओहो, वह कितनी कितनी खुश होगी, खूब खूब खुश होगी। तुम कट्टोको क्या समझते हो?—वह तुम्हारी नाखुशी लेकर जिंदा रह सकेगी?—और क्या समझते हो कि वह तुम्हे समझती ही नहीं? वह तुम्हें खूब समझती है। तुम जो करोगे, अच्छा करोगे, और कट्टो उस अच्छेमे खूब आनंद मनायेगी। तुम तो कट्टोके मालिक हो,—फिर उसकी फिकर क्यों करते हो?...."

सत्य सफेद-फक हुए खड़े है। बिहारी एक कोनेमे मुँह फिराकर और हाथोंमे छिपा कर खड़ा हो गया है।

"अरे—ऐसे क्यों खड़े हो? क्या गुम्मा-सुम्...बिहारी बाबू" अंतिम शब्दोंके निकलते-निकलते निगाह बिहारीकी ओर फिरी—"अरे, यह बिहारी बाबूको भी क्या हो गया है?...."

बिहारीको क्या हो गया है—कुछ नहीं! वह तो हँसता-सा आ रहा है। आँखें लाल हैं, गाल धोखा देकर भेदकी बात कहनेको हो

रहे है,—फिर भी बिहारी हँसता बढ़ा आ रहा है। सामने ही खड़े होकर बोला—

"यह खड़े है, बिहारी बाबू।"

"तुम्हें कौनसा भूत चढ़ता है, बिहारी बाबू?"

"मुझे तो एक-ही भूत चढता है—हँसीका। वह जब कामसे कहीं जाता है, तो मुझे मुँह छिपाकर खड़ा हो जाना पड़ता है।"

"देखो, यह मुझसे बोलते नहीं। इनपर क्या फिर भूत चढ़ गया है, बिहारी बाबू?"

"चढा भी होगा तो उतर जायगा। अब वह नहीं चढा करेगा। इन्होंने एक देवीकी आराधना की है। तुम नहीं जानती उसे। उसका नाम है फ़िलासफी। वह ऐसे-ऐसे भूतोंको पास नहीं फटकने नहीं देती। मेरेवाला भी उस देवीसे बहुत घबड़ाता है।"

"इनको बुलाओ तो...."

"चेष्टा करता हूँ। पर सँभव है इनके मुँहसे अभी वह देवी ही बोल उठे। तब तो उसकी बात शायद है कि आपकी समझमे न आये। पर आप घबड़ायें नहीं—समझनेके लिये हैरान न हों। क्यों कि वे बातें बिरलोंहीकी समझमे आती है।"

इतना कहकर बिहारीने सत्यके कानमे गुनगुना दिया—'गड़बड़ करोगे तो गरिमा गई!—कट्टो चढ़ी! तब तो गजब हो जायगा! चेत उठो।'

सत्य एक दम चौक उठे—

"बिहारी, चले जाओ, तुम यहाँसे।"

बिहारीने फरियादके ढँगसे कट्टोसे कहा—

" भूत तो भागा, पर साथ ही मुझे भी भागना पड़ता है !—यह क्या न्याय है ?"

" बिहारी बाबूको रहने दो।" कट्टोने मानों निर्णय देते हुए कहा—

" उन्हें क्यों भेजते हो ? "

सत्य अब फिर चुप।

कट्टोने कहा—" बोलोगे नहीं ? "

चुप।

" बोलोगे नहीं तो मै जाऊँ ? "

"——"

" जाऊँ ? "

" जाओ। "

" तब एक बात कहती हूँ। एक,—बस एक। उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा। करोगे ? "

" कहो। "

" करोगे ?—कहती हूँ, तुम्हारा उसमें कुछ नहीं जायगा। कहो–करोगे। "

" करूँगा। "

" जीजी आयेगी तो पहले मेरे यहाँ खायेंगी। मैं पहले खिलाऊँगी—चाहे कुछ हो, मै खिलाऊँगी। न होगा, तो तुम्हारे घर आ कर मै बनाऊँगी। पर पहिली रोटी वह मेरे हाथकी खायेंगी। क्यों,—करोगे न ? "

सत्यने अपना सारा बल कंठमें खींचकर कहा—'हाँ'

इस 'हाँ' को सुनकर कट्टो संगमरमरकी मूर्ति-से खड़े सत्यके पैरोंमें जाकर लोट गई।

एक बार और लोटी थी। तब शाम थी, अब दोपहर है। तब स्वर्गके द्वार खोले गये थे,—आमन्त्रणपूर्वक; अब आमंत्रित कट्टोके सामने ही ढाल दिये गये है। खुले थे तब भी वह इन पैरोंमे लोटी थी, बँद कर दिये गये है तब भी वह इनमें ही पड़ी है! वह कैसी है और यह कैसे है!

कुछ देर सन्नाटेके बाद आवाज आई—

"जाऊँ?"

वैसी-ही भरी आवाज़ हुई—

"जाओ।"

"जाऊँ?"

"जाओ।"

तब वह कट्टो उठी। आँसू ढरकना बंद हो गया है, मेहके बाद अब चाँदनी मानों मुँहपर थिरकनेको हो रही है,—यह अब ताजी धुली-हुई कट्टोकी किरण-कौमुदी मानों हँस देगी! बोली—

"बिहारी बाबू, घरतक साथ चलोगे?—काम है।"

बिहारी बाबू मानों जग उठे, फिर भी अधजगेसे कट्टोके पीछे-पीछे चल दिये।

२७

वही कमरा है, वही आला है, वही कट्टो है। फिर भी वही नहीं है। उसी कटोरेमे वैसा ही सफ़ेद दूध है—पर जैसे जादूका फ़ूँक फेर दिया गया है, और वह दूध नहीं हालाहल है। इस कमरेकी स्मृति, यह सामनेका आला जिसमे उस दिनका छः पैसेका दर्पण रक्खा है और वह कँघा और वह टिकुलीकी डिबिया, मानो सब उसको चिढाते हुए उससे कह रहे है,—'तुमने हमे धोखा दे कर रक्खा है, हम पराये है! पराये है!!' स्मृतियाँ, उमड़-उमड़कर कह रही है—'तुम स्वप्नकालमे हमसे खूब खेलीं! अब तुम्हें जगा दिया है, अब हम जाती है! जाती है,—कहीं और!!' वह सब अँगूठा दिखा-दिखाकर मानो कह रही है—'कहीं और! कहीं और!!' जो अभी बीते क्षण तक सत्य था, वह सब कुछ इन स्मृतियोंका साथ देकर, उसे बिरा रहा है, जा रहा है—'कहीं और!!!'

ठठोली करते हुए, पराये दिखते हुए, इस कमरेमे ही बिहारी खड़ा है।

कट्टोने अब बिहारीको देख पाया,—ऐसे विस्मित-चकित भावसे देखा, मानों पूँछना चाहती है—'तुम कौन हो—क्यों आये?—क्या चाहते हो?' बिहारीने निस्संकोच कट्टोका हाथ अपने दोनों हाथोमे लेकर कहा—

"मै गरिमाका भाई हूँ। समझी कौन हूँ? अब कट्टोके सिवाय कुछ नहीं कहूँगा।"

" कहो, जो चाहे कहो, बिहारी बाबू। तुम उनके मित्र हो, और मेरे लिये सब कुछ हो। "

बिहारीने बड़ी तीक्ष्ण जिज्ञासा, बड़ी आशंका, बड़ी आकाक्षासे पूँछा—

" कट्टो, अब क्या....? "

" पहिले एक थे, अब दो हो गये हैं। दोकी सेवा करूँगी। मेरा तो काम और बढ गया है। "

बिहारी कहना चाहता है, सत्य इस योग्य नहीं है। पर सामने खड़ी इस भक्तिनके आगे मूर्त्तिपर हाथ रखते डर लगता है। कट्टोकी ख़ातिर वह सत्यको अब कुछ न कहेगा।

" सत्य अब तुम्हारी सेवा नहीं लेगा, कट्टो। न तुम्हारी जीजी यह होने देगी। "

" न सही; मेरा काम मेरा काम है। तनसे नहीं तो मनसे तो करूँगी ही। "

इसी क्षण कुछ उट्ठा, और बिहारीके शरीर और आत्माको एक रंगमें रंग गया। परमात्माने इन दोनोंको साथ ला दिया है,—अब दोनों धाराएँ एक होकर बहेंगी, उनका कुछ और काम नहीं होगा। अपनी संयुक्त-जीवन-धारापर किनारे-किनारे तीर्थ स्थापित करें, और यह पुण्य-गंगाकी तरह लोकमे बहती निकलती चली जाय,—कल्याण सरसाती हुई, खेतीको हरियाती हुई, लोगोंको नहलाती हुई, लहराती हुई अनंत-सागरमें विलीन हो जाय। बिहारी एक क्षण इस लोकोत्तर भावनाके प्रबल प्रस्फुटनमें आत्मसात् हो गया। फिर बोला—

" कट्टो, एक साक्षात्कार हुआ है।...."

यहाँ उसका कंठ काँप गया और आवाज़ धोखा दे गई।

" बिहारी बाबू !...."

वह भी इतना कहकर चुप हो गई। रुक कर फिर कहा—

" यह न समझो, मैं तुम्हें ग़लत समझती हूँ। तुममें तो कुछ समझनेको है ही नहीं। जो बाहर है, वही भीतर है। भीतर भी वही विनोदका झरना झरता रहता है, जिसका आधा जल आँसूका और आधा हँसीका है, और जिसमेसे हर बात आर-पार दिखाई देती है। लेकिन अनहोनी घट नहीं सकती, होनी टल नहीं सकती। जो हो गया, हो गया,—उसे मिटाना अब बससे बाहरकी बात है। जो चढ चुका,—उसे चरणोंमेसे वापिस खींच नहीं ला सकती। वह अब मेरा नहीं रह गया। लेकिन...."

" लेकिन....?"—बड़ी व्यग्र उत्कंठासे बिहारीने कहा—

" लेकिन एक बात है। सोती हूँ तो आकाश-गंगाको ऊपर खिलखिलाते देखती हूँ। वह हमपर नीचेको देखती रहती है। हमारी जगतकी यह गंगा भी ऐसे ही ऊपरको देख-देखकर हँसती रहती है। मुझे लगता है, ये दोनो गंगाएँ एक दूसरेको देख-देखकर ही जीती है। इस सारे अनंत शून्य, किसी गणनामें न आ सकनेवाले, आकाशको भेदकर इनकी हँसी एक दूसरेको परस्पर कुशल-क्षेम दे आती है। ये दोनों बहनें हैं। माळूम होता है दोनों आपसके समझौतेसे इतनी दूर जा पड़ी है,—जिससे दोनों एक ही उद्देश्यको अलग-अलग जगह पूरा कर सकें। दूर है,—फिर भी पास हैं। अलग है,—फिर भी एक हैं। बिहारीबाबू,.... बिहारी बाबू, क्या यह हो नहीं सकता?—क्या हम भी दो ऐसे नहीं

हो सकते? दूर,–फिर भी बिल्कुल पास। अलग,–फिर भी बिल्कुल एक। एक ही उद्देश्य, एक ही जीवन-लक्ष्यमे बँधे हुए?"

बिहारीने कहा—"कट्टो!...."

कट्टोने कहा—

"आओ, मेरे साथ बँधते हो? मैंने तुम्हे देखा, तुमने मुझे देखा। तुमने मेरी भाषा भी देखी, भाव तो देखे ही। 'वह' नहीं जानते मै कितनी पढ गई, कोई भी नहीं जानता, मै भी नहीं जानती थी। अभी जानी हूँ, जब तुम जाने हो। इतनी हिंदी जाननेके बाद, कुछ करोगे तो तुम्हे भी मदद पहुँचा सकूँगी। इतनी भाषा, अम्माँके बाद, मुझे रोटी भी दे ही देगी। इस तरह पढने-लिखनेके लिहाजसे भी, तुम्हे मुझपर शर्म करनेकी जरूरत नहीं। बोलो, बँधते हो?"

"भाड़मे फेको, पढनेको।....बँधता हूँ।"

"बिहारी बाबू, बड़ा कठिन यज्ञ सम्पन्न करनेके लिये बँधते है हम। सोच लो तुम। बहुत लम्बा जीवन आगे पड़ा है ..."

"तुम मुझसे छोटी हो। तुम्हारे लिये व्रत और कठिन...."

"मुझपर तो वह आ पड़ा है, पर तुम....?"

"कट्टो, बँधता हूँ.... ।"

"उस यज्ञके लिये सबसे सुंदर शब्द है मेरे पास 'वैधव्य,'— अर्थ है 'स्वात्म-आहुति'—बँधते हो?"

"बँधता हूँ।"

कट्टोका बायाँ हाथ बढ़ा, बिहारीका दायाँ। दोनों एकमें गुँथ गये।

" हम दोनों वैधव्य-यज्ञकी प्रतिज्ञामे एक-दूसरेका हाथ लेकर आजन्म बँधते हैं। हम एक होंगे,—एक प्राण, दो तन होंगे। कोई हमें जुदा नहीं कर सकेगा। "—कट्टोने कहा।

" हम दोनो वैधव्य-यज्ञकी प्रतिज्ञामे एक दूसरेका हाथ लेकर आजन्म बँधते हैं। हम एक होंगे,—एक प्राण दो तन। कोई हमे जुदा नहीं कर सकेगा। "—बिहारीने दोहरा दिया।

कट्टोने कहा—

" आज मेरा विवाह पूर्ण हुआ। वैधव्य सार्थक हुआ। "

बिहारीने कहा—

" यह महाशून्य साक्षी हो, हम कट्टो-बिहारी सदा एक दूसरेके प्रति कट्टो बिहारी रहेंगे।—न कम न ज्यादे। "—फिर बिहारीने कहा—

" कट्टो, कट्टो, जो दूँगा, लोगी ?"

" जो दोगे लूँगी। "

कुछ देर वह चुप रहे। फिर कट्टोने थोड़ा हँसकर कहा—

" हमारे जीवनकी सिद्धि अनायास, अयाचित, अनपेक्षित इस तरह हमारी राहमे आ गई। अब आओ, मेरा एक काम करो। तुम घर कब जा रहे हो ? "

" आज रात, नहीं तो कल सबेरे जरूर। "

कट्टोने तिसपर टिकुलीकी वह डिबिया ली, वह कघा और शीशा, और हाथोसे वह दो लाल चूड़ियाँ निकालीं, उन्हे एक पोटलीमे बाँध दिया, कहा—

" तुम्हारी बहिन—क्या नाम है ?—गरिमा। वही मेरी जीजी। उन्हें यह जाके देना। कहना,—एक कट्टो है, नटखट लड़की, गँवारिन, उसने

ये दी हैं। वह उसके मास्टर रहे हैं। और वह उसकी जीजी हैं। कहना, मैंने उनसे वायदा ले लिया है, पहले जीजीको मेरे यहाँ खाना होगा। यह भी कहना, कट्टोको उन्हें अंग्रेज़ी पढानी होगी। और कहना, कट्टोको आशीर्वाद दे। सेविकाईका मौका मिलेगा, एक बार तो उससे पहले भी आशीर्वाद दे ही दें। ...यह सब कहोगे न? कहो—कहोगे।"

"ज़रूर कहूँगा। और कहूँगा, यह सुहाग कट्टोका उतरन है—।"

"हैं—हैं।—यह क्या कहते हो? यह तो मैंने जबर्दस्ती चढा लिया था। उतरन कैसे हुआ? नहीं नहीं, बिल्कुल नहीं। मेरे पास शुभ-से शुभ जो चीज है, जिसपर मैंने प्यारीसे-प्यारी भावनाएँ अर्घ्य-रूप चढाई है, वही चीज़ मै उन्हें दे रही हूँ।"

"सब कहूँगा। और कहूँगा, कट्टोके साथ मेरा वरण हो चुका है।"

"कह देना।"

"तो मेरा काम हो चुका?"

"हाँ"

"जाऊँ?"

"जाओ,—माँके पैर छूते जाना।"

"जानेसे पहिले कुछ दोगी नहीं?—यह अच्छा वरण!"

"क्या दूँ?"

"कुछ-भी-तो—"

"अच्छा लो...."

तभी उसे एक आसनपर बैठाकर झट-से चर्खेपर सूत काता। हल्दीके रंगमे उसे रंगकर माला बनाई। दोनों हाथोंसे वरमालाके रूपमे पकड़ा, धोतीका छोर जरा आगेको किया, और एक खट्टी मीठी हँसी

हँसके बिहारीके गलेमें डाल दिया। फिर एक नमस्कार किया, चरणोंमें हाथ लगाया और फिर उस हाथको अपने माथेसे छुआ लिया।

इस समारोहमें बस उस कमरेकी स्तब्ध शून्यताने, मानों अपनेको खोकर, भूलकर, तन्मय होकर, मौन योग दिया। बाहरी आँखे इस शुचि व्यापारपर पड़नेसे बची रहीं। इस गठ-बंधनकी एक मात्र साक्षी होकर अचर-प्रकृति मानों जी-ही-जीमें अबतक मग्न-मूक है।

"माला सत्यको दिखाऊँगा।"—बिहारीने मंत्र-बद्धताको तोड़ कर कहा।

"तुम्हारी है, जो करो।"

"जाता हूँ, कब मिलना होगा?"

"देखो—"

"अच्छा, कट्टो प्रणाम। बिहारीका प्रणाम। प्रणाम लो और यह लो।"

एक बुरी तरह भिड़ा कागज थमाकर बिहारी निकला, माँकी चरण रज ली, रुका नहीं, चला गया।

१००) का नोट खोले कट्टो कुछ सेकिंड खोई-सी खड़ी रही, फिर चौकेकी सँभालमे चली गई।

२८

बिहारी अपने घर पहुँचा। बाबूजी बैठकेमे ही बैठे है।

ताँगेसे उतरा नहीं कि पूँछा—"आगये !....", अर्थात्—'क्या लाये ?'

"हाँ, आगया।"

"क्या बात रही ?"

"अभी आता हूँ,—ज़रा यह सामान,....ऊपर....."

"हाँ-हाँ।

बाबूजीने देखा, सामान नौकर ले ही जा रहा है, एक मिनटको तो यहाँ बैठ ही सकता था,—बात कहनेमे देर लगती कितनी है,—पर नहीं, ऊपर !....। खैर, लक्षण बुरे नहीं है।

बाबूजीसे बात तो कहेगा ही, पर कट्टोका काम खत्म करनेकी उसे जल्दी है। सबसे पहिले कट्टो, फिर और कोई। जरा-सी तो पोटली है, जेबमे डालकर ऊपर पहुँचा। पुकारा—

"गिरी !—गिरी !...."

गिरी चौकेमे है। बाल सुखा-सुखू कर अभी गई है,—देखने, महाराजिन सब कुछ ठीक कर रही है या नहीं,। महाराजिनको इतना कह चुकी है, फिर भी कुछ-न-कुछ गड़बड़ हो ही जाता है। गरिमाको

क्या वह जानती नहीं है ? ठीक नहीं करेगी,—तो दिल्लीमे महाराजिनोंकी कमी पड़ी है ? सो ही बात गरिमा अब बारहवीं बार महाराजिनके कानके रास्ते अकलमे धँसा देनेको वहाँ पहुँची है। मोटी, फूले नथनों-वाली, सागके बाज़ारमें जो सब कुजड़ोसे बाजी ले जाती है, वही कुसलो इस छोटी मालकिनके सामने थर-थर काँपती है। इस देहके कम्पनमे अगर नोन, बटलोईमे गिरते-गिरते खीरकी पतीलीमें पड़ जाता हो, तो पाठक और लेखक अचरज न करेगे और उसे क्षमा कर देगे। लेकिन जिन्हे वह खीर खानी पड़ती है, उन सबके दोषकी सम्पूर्ण स्वत्वाधिकारी प्रतिनिधि होकर जब वह छोटी मालकिन, साँपिनकी तरह चमकती और फुफकारती, महाराजिनके सिरपर आ खड़ी होती है, तो अगर नोन खीरमे नहीं पड़ता, तो मिर्च दालके बजाय आँचमे पड जाती है। तब महाराजिन खाँसी और छींकमे व्यग्र होकर अपनी सफाई देनेमे अक्षम हो जाती है, और छोटी मालकिन भी अपने गुस्सेको आधा निकला हुआ और आधा पेटमे ही खौलता हुआ लेकर वापिस पलायन कर जाती है। तब वह छींकती भी जाती है, और झींकती भी जाती है। ऐसा ही साधारण संयोग इस समय भी घट गया था। चौकेमें उसने भैयाका आना सुना। तभी मिर्चाहुति चूल्हाग्निमे छूट गई। और तभी वह बाहर दौड़ी और तभी बोली—

"मै ..छिं:—छीं: ...भैया....छिं: "

भैयाने यह अपनी अगवानीपर लगातार छींकोंकी सलामी सुनी।

"यह क्या मामला है ?"

"वह कम्बख्त—आक् छिं:, डैम....छिं:...."

"यह छिं: और सुशब्दोकी बौछार मेरे आते ही...."

" वह डैम्, रैस्कल—आ....आ....क्....छिः...."

" मुझे माफ करो। मै चला जाता हूँ, भई।"

" शैतान, कलसे ही....छिः छिः....छिः....छिः"

छींकोका प्रकोप शात हुआ तब बिहारीने संबोधन किया—

" गिरी ..."

" वह महाराजिन कलसे नहीं रह सकती। मै कहती हूँ...."

" मेरी बात सुनती हो,—या . ."

" सुनती हूँ,—लेकिन तुमने ही . "

" हाँ, मैने ही सृष्टि रची, और मै ही बिगाड़—"

" तुमने ही यह महाराजिन रखवाई थी।"

" अब दोष नहीं होगा, तो। बस, अब तो स्वस्थ हुई?—या अब...."

" स्वस्थकी बात नहीं, कोई न कोई गड़बड़ कर ही देती है।"

अच्छा, अब इस अध्यायको खतम करो। प्रकोप-पर्व समाप्त, दूसरा पर्व शुरू। सुनो—"

सारी आकृति और चेष्टामे 'सुनाओ—' का भाव लेकर वह सुननेको खड़ी हो गई।

" मै वहाँसे आ गया हूँ। तुम्हारे लिये सोहाग-कोथली ले आया हूँ। लो।"

बिहारीने वह पोटली खोलकर गरिमाके आगे फैला दी।

" किसने दी?—उस....?

" हाँ उसने ही। जानती तो हो उस कट्टोको?"

गरिमा कट्टोको खूब जानती है। सत्यका रुख अबतक वह खूब समझती जा रही थी। जानती थी,—जड़मे कट्टो ही है। यह जानते ही उसने उसे अपने प्रतिद्वंद्वीके रूपमे स्वीकार कर लिया था। बाबूजी और सब जोर लगा रहे है, तब भी वह रुख अनमनाया ही हुआ है,—यह देखकर इसने समझ लिया प्रतिद्वंदी प्रबल है। तभी इसके बड़प्पनने उठकर इस हलकी-सी उठती हुई स्पर्द्धाको तीक्ष्ण धार दे डाली। 'वह गँवार छोकरी मेरा मुकाबला करेगी—मेरा ?' यह भाव उसे दिन-रात सुलगाये रहने लगा। यह सुलगता हुआ भाव कभी महाराजिनके सिरपर फूटता था, कभी माँके, और कभी बाबूजीके। गरिमा सत्यको चाहती थी, इसमे संदेह नहीं। वह युवती थी तिसपर पढ़ी-लिखी और सत्य भी शकलमे बिल्कुल हबशी नहीं था। और न चाहना यौवनका स्वभाव नहीं है। लेकिन जब कट्टोका नाम सुना, और वह तकिया देखा, तब यह साधारण-सा खिंचाव एकदम, ईर्ष्याकी धारकी तरह, पैना हो उठा। तब वह सत्यको प्यार करनेपर लाचार हो गई। और यह प्यार उसे ही काटने और घायल करने लगा।

अब बिहारी पक्की खबर ले आया है, और यह कट्टोने दी है कुछ चीजे !—इन सबको अपनी जीतकी भेटके रूपमे उसने स्वीकार किया। कट्टो कैसी कट गई होगी, देखो न, चली थी मुझसे बदने ?—आदि-आदि चहकते विचारोमे वास्तव-संवादकी खुशी मानों खो गई है। सत्यसे विवाह होगा, यह बात तो जैसे उसके ध्यानमे है ही नहीं, मै जीती हूँ, कट्टो आखिर हार गई है,—इसीकी नशीली खुशीमे वह खुश है।

"तो यह उसीने दीं ?"

"हाँ—"

" वह क्या यह जानती नहीं, मै उस जैसी गँवारिन नहीं हूँ ?"

" वह कुछ नहीं जानती...."

" मेरे लिये इनका उपयोग कुछ नहीं, सिवाय—फेक देनेके !...."

" हे-हे, फेकना नहीं, मेरी कसम ।"

" य' कघा, य' शीशा, और ओ-हो यह कुंकुम !—छि: !—मै क्या करूँगी इनका ?—बड़ी सौगाते है न ?"

" गिरी, ये सौगाते ही है । मेरी कसम जो इन्हे फेका तो ।"

" ऐसे इनमे क्या लाल है ? कितने पैसेकी होगी ये सब ?"

" गिरी, कट्टोने कुछ कह भी दिया है तुम्हे कहनेको...."

" क्या-क्या, सुनूँ तो !"

कहा है कि कहना—' वह मेरी जीजी है । यहाँ आयेगी तो मै उनसे अँग्रेज़ी पढ़ूँगी और टहल करूँगी ।' और और गिरी, तुम्हे वहाँ पहिली रोटी उसके घर—उसके हाथकी खानी पड़ेगी । कट्टोने सत्यसे वायदा ले लिया है । और—और उसने आशीर्वाद माँगा है ।"

यह बात गरिमाके भीतर तक पहुँच गई, लेकिन जैसे भीतर उसको आश्रय नहीं मिला । गरिमा इस बातको कुछ समझ पाई नहीं । और उसको लेकर वह उधेड़-बुनमें पड़ गई । इसके कहनेका क्या तात्पर्य है, कैसे वह कह सकी यह बात !—सो उसकी समझमे नहीं बैठता । उसने कहा—

" उसे मानों और कुछ कहनेको नहीं था ?"

" गिरी, एक बात कहूँ ?"

" कट्टोके बारेमे ?—कहो, जो कहना चाहो ।"

वह अब कट्टोको रोषका पात्र नहीं देखती। कभी उसके बारेमें सोचा था,—मानों उसपर अनुग्रह किया था। अब मानों उस उपेक्षित चिंताकी आवश्यकता शेष हो गई है। अब वह कृपाके साथ उससे सहयोग-सम्बन्ध स्थापित कर लेगी। अब काहेका खिंचाव,—काहेका तनाव? मानों, जो पहिले रोष किया था, अब अनुग्रह दिखाकर उसका सारा बदला चुका डालना चाहती है। इसीलिये आग्रहके साथ उसने कहा—"कहो जो कहना चाहो। न हो, तो कहो वह कैसी है। मै उसे अब प्यार करूँगी।"

"गिरी, वह सुंदर नहीं है। पढ़ी-लिखी ज्यादे नहीं है। हम-वह बँध गये है, मैने विवाह किया है।"

इसके लिये गरिमा तैयार नहीं थी। यह सौभाग्य क्या कट्टोके योग्य है? कट्टोको प्यार तो करेगी—करती; पर यह, एकदम इतना सौभाग्य!—कट्टोने यह अपनी योग्यतासे कमाया नहीं है, निस्संशय छलसे प्राप्त कर लिया है।—इतनी उसकी स्पर्द्धा! उसने कहा—

"ओह, तुम्हे क्या हो जाता है, भैया। उसने जादू कर दिया है, चु.. कहींकी!"

"हाँ जादू किया है। वह जादूगरनी है। मैंने ही उसके जादूसे सत्यकी रक्षा की है। पर रक्षा-रक्षामें खुद फँस बैठा।"

"यह क्या पागलपन है....?"—गरिमा बोली।

"क्या पागलपन है!—" कहते-कहते बाबूजीने प्रवेश किया। अबतक बिहारी लौटा ही नहीं, यह कैसी बात है, आखिर उकताकर बाबूजी खुद ऊपर चढ आये हैं। गरिमाकी तरफ़ देखकर कहा—

"....यह पागलपन क्या....?"

"बाबूजी, बिहारीने ब्याह कर लिया है। वह कट्टो...."

बाबूजी चौंके—"क्या ?"

"वह कट्टो लड़की, आपने सुना होगा.... ।"

बाबूजीके मुँहसे निकला—

"बिहारी ?"

बिहारीने अविचलित अकम्प स्वरमे कहा—

"जी"

बाबूजी क्षणेक गुम रहे । फिर क्या हो गया ?—बोले—

"बहूको कब लाओगे, घरमें ?"

"बाबूजी, वह घर नहीं आयेगी, वहीं रहेगी ।"

"क्या ?"—ज़ोरसे झटककर बाबूजीने कहा ।

"वह वहीं रहना चाहती है ।"

"और तू ?"

"अभी तो इम्तहान देकर घूमने जाऊँगा । आप फ़िकर न करे, फेल अबके कभी न हूँगा । घूमनेमे दो साल लग जायँ,—शायद ज़्यादे भी । लौटकर, आपसे परामर्शके बाद, देखूँगा, क्या करूँगा ।"

"और बहू ?—नहीं, वह यहाँ रहेगी । मेरी बहू वहाँ रहेगी, वैसे रहेगी, और यह रुपया यों भरा-भरा सड़ेगा ? नहीं, वह यहाँ रहेगी, बिहारी ।"

"बुला भेजियेगा । आये, तो आ जायगी ।"

"मै पहेली सुलझाना नहीं चाहता ।—कैसा यह ब्याह है तेरा ?"

"हमारा ब्याह हुआ है इसलिये कि हम दूसरा ब्याह नहीं करेंगे । साथ रहे रहे, न रहे न रहे,—कुछ बात नहीं । क्यों कि हम हमेशा साथ है ।"

"यह पागलपन खतम करो। जाना हो जाओ। पर यह पागलपन मै नहीं सुनना चाहता। मै तुम्हे किसी बातसे नहीं रोकूँगा। पर ऐसी दुनिया-से-परे-की बातें मेरे सामने न किया करो।"

तब बाबूजीने घरके आँगनमे जाकर बिहारीकी माँसे, पुकार-पुकारकर, कहा—

"सुना कुछ ?—बिहारीने ब्याह कर लिया है। बहू वहीं गाँवमे रहेगी,—बिहारी लापता होगा। ऐसी बात तुमने सुनी है कभी ?"

"ब्याह हो गया—किसीको पता भी नहीं ! और बहू वहाँ, और यह यहाँ भी नहीं वहाँ भी नहीं ! !—यह कैसा किस्सा कह रहे हो तुम ?"

"कैसा है, सो बिहारीको ही बुलाकर पूँछ लेना।"

कहकर बाबूजी बैठकमे जाकर, आजके अखबारमेसे दुनियाकी असारता खोजने लगे। गरिमाकी बात, हठात्, भूल ही गये।

२९

ब्याह हो गया है। बड़े घरकी बेटी, खूब अँग्रेज़ी-पढ़ी बहू गाँव आई है। दुनियाका आठवाँ आश्चर्य उठकर मानों गाँव आ गया है।

पर ठैरो, नई-नवेली बहूको देखनेकी उतावली न करो। औरतोंकी भीड़ जो उसे घेरे है उसे छँट जाने दो, और कट्टोको जरा छुट्टी पा लेने दो। उसके साथ-साथ अकेलेमे चलेगे।

इधर कट्टोकी जान-पहचान नई बना ले। वह अब वैसी-ही पेड़-वाली कट्टो बन गई है। कुछ आया था जिसके कारण वह लहँगा-ओढ़ना पहनकर कौनेमे दुबकी-सिमटी बैठे रहनेकी बात सोचने लगा था, लेकिन वह चला गया,—चलो अच्छा ही हुआ,—और अब फिर वह वैसी ही भागने-उछलने और चहचहाने लगी है।

· जीजी कबकी आई है,—पर उसे फुर्सत नहीं निकल रही है। बात यह है कि वह इतनी जनियोंके बीचमे जायगी तो चुपचुप बैठे रहना पड़ेगा,—और यह उससे न होगा। वह तो जीजीसे मचलना चाहती है, अभी कुछ जीजीसे उलझे बिना उससे कैसे रहा जायगा? बाल भी तो उनके काढ़ूँगी, उनकी चीज़े भी देखूँगी,—सब उनकी किताबें भी, गहने भी। इसीसे वह कुछ-न-कुछ धरा-सँभाल किये ही जा रही है।—पर ये औरते भी कैसी है, जमके ही बैठ गई है, टलती ही नहीं!—अब कट्टो भीतर-ही-भीतर कुलबुलाते-कुलबुलाते तंग हो गई है। बैठी है तो बैठी रहो,—वह तो अब जायगी ही।

लो, तैयार हो जाओ।

प्रौढा और नवीना, मुखरा और मौना, उज्ज्वला अपितु श्यामल-कांता आदि विविध बखानकी स्त्रियाँ विभिन्न वर्णों और वर्णनोके साज और सिंगार पहने, अचरजसे थोड़ा सम्मान-संभ्रम-पूर्ण अतर छोड़े 'एक' को चारो तरफसे घेरे बैठी है। वह एक—बहू बनकर आई हुई गरिमा है। देखो तो, कैसा ओन्ना ओढे बैठी है, और लहँगा सिमटाकर ऐसा कर लिया है कि दीखे ही नहीं। मानो इसे और कुछ पहनना आता ही नहीं, सदा यही पहिना की है, और सदा मानों यही कपड़े पहिने, यों ही बैठी रही है। गहने एक एक अगपर झलमल-झलमल कर रहे है। आँखे सामने किसी अज्ञात बिंदुके भीतर घुसनेका प्रयास कर रही है, थक जाती है तो बाये हाथके कगनकी एक उठी-हुई नोकपर आ ठैरती है। बहू, इस तरह इतनी दृष्टियोसे जकड़ी-हुई, बैठे-बैठे थक गई है, चाहती है इनकी नजरे कुछ ढीली हो, कुछ बातचीत हो, जिससे उसके चारों ओर फैला हुआ यह विशिष्टताका परिवेष्टन टूटे और उसे आदमीकी तरह कुछ करने-धरनेका अवकाश मिले। पर ये सब आपसमे बोल सकती है, उससे नहीं बोल सकतीं,—न जाने य' कहीं अँग्रेजी बोल पड़े !—वे तो बस इसे देख सकती है।

बहू उठ सकती नहीं, और अब बैठे भी रह सकती नहीं। वह बड़ी व्यथा पा रही है। कितनी बार उस बिंदुसे हटकर कंगनेपर और कंगनेसे उस बिंदुपर लौट लौट जाकर उसकी दृष्टि थक चुकी है। तभी सुनाई दिया—

"जीजी!"

उठ पड़ी, देखा,—ज़रूर वही है; अनायास कह उठी—" कट्टो ! " अनायास वह खिल गई; अनायास हाथ फैल गये,—मानों स्वागतके लिये; अनायास, एकदम, सब कुछ बह गया; अनायास इस कट्टोको बैठानेके लिये मानों हृदय, किवाड़ खोलकर सम्मान-सहित खड़ा हो गया ।

कट्टो दौड़ी आई, उस आलिंगनमें बँध गई ।

" जीजी ! "

" कट्टो ! "

जैसे दो सरिताएँ मिल गईं, दो लताएँ मिल गईं, दो कोमलताएँ मिल गईं ।

स्त्रियोने देखा—' यह क्या ? कट्टो बाहर कभी नहीं गई, बहू यहाँ पहिली ही बार आई है—फिर यह क्या ? '

वे क्या जाने, दोनोके हृदय,—एक ओरसे, चाहे स्पर्द्धा और इर्ष्यासे हो, और दूसरी ओरसे श्रद्धा और अर्चनासे;—बहुत पहिलेसे एक-दूसरेसे परिचित है । और वे क्या जाने स्पर्द्धा और श्रद्धा, और ईर्ष्या और अर्चना एक ही भावनाके ओर और छोर है,—ऋण और धन दो सिरे है । उन दोनो सिरोके बीचमे रहने और बहनेवाला तत्त्व है—आकर्षण ।

३०

दोनों अकेली हैं।

" जीजी, मेरी बात उन्होंने कही थी ? "

" कही थी। ब्याहकी भी कही थी। "

" वह तो हँसी बहुत करते है। हमेशा हँसी !—यह कोई ठीक बात है ? "

" अच्छा, उसकी ठीक बात नहीं है। फिर तू ही बता ठीक बात। "

" जीजी, कुछ नहीं। भला, व्याह कैसा ? जीजी, जानती नहीं तुम, मै तो विधवा हूँ। विधवाओंका भी ब्याह होता है ?—छि "

" तुम तो एकदम व्याहपर जैसे थूकती हो !—फिर क्या बात ! "

" कुछ बात भी हो जीजी !—बिहारी बाबू तो यों ही ."

" देख, कट्टो, छिपेगी तो ठीक नहीं। मै फिर तेरी कुछ भी न ठैरी ? मै तेरी जीजी नहीं हूँ, भला ? और जीजीसे तू अपनी बात न कहेगी ?"

" हमने प्रतिज्ञा की है, वह कुँआरे रहेंगे, मै ऐसी ही रहूँगी। और हम दोनो अपनी बात नहीं सोचेंगे, दूसरोंकी सोचेंगे। मुझे तो सोचनेके लिये तुम हो, और तुम्हारे ' वे ' है। जीजी, उन्होने तो मुझे पढ़ाया है, मै भला क्या जानती थी, और वह न होते तो आज क्या मै तुम्हे जान पाती ? बिहारी बाबूसे भी अपने आपमें ही सुखी नही

रहा जाता। बिहारी बाबू तो दुनियामें बिहारके लिये ही बने है। वह क्या एकके होने लायक हैं,—सबके है। मैने यही देखकर उनके साथ प्रतिज्ञा बाँध ली। बस यही बात है जीजी,—इसे बिहारी बाबू ब्याह कह लें या कुछ भी कह ले।"

"यह अद्भुत बात तुझे कैसे सूझी कट्टो?"

"अद्भुत क्या है जीजी, इसमे? बिहारी बाबूको देखकर मुझे ऐसा लगा कि उनकी आत्मा किसी एकका सहारा पाकर कल्याण-रूप होकर व्याप्त हो जाना चाहती है। और वह उस 'एक' को खोजते फिर रहे है। मैंने अपनेसे पूँछा—'क्या मै वह 'एक' हो सकती हूँ?' मनने कहा—'क्यों नहीं?' जीजी, सो यह बात हिम्मत करके मैने कह डाली ."

"तुमने यह आत्मा पढ़ना कहाँ सीखा? देखती हूँ, तुम तो बड़ी होशियार हो!"

"जीजी, तुम तो ठट्ठा करती हो। आत्मा क्या कोई सबकी पढी जाती है? और क्या कोई सीखा जाता है? बिहारी बाबू तो मुझे ऐसे दीखे जैसे छापेके अक्षर, कोई साफ-साफ एक एक पढ ले।"

"तो फिर यह ब्याह कैसा हुआ? वह तो कहते थे, ब्याह हुआ है और तुमने उनपर जादू फेरा है।"

"जीजी, वह तो बात ऐसी ही ठट्ठेसे कहा करते है। हम कब चाहते है, लोग उसे ब्याह कहे, ब्याह समझे। हाँ, इतना है कि मै उनके और वह मेरे जीवनसे मिल गये है। —हम बँध जो चुके है, एक ही प्रतिज्ञामे। उनसे मेरा, और मुझसे उनका जीवन बनेगा और पूर्ण होगा। मै उनके लिये मर जाऊँगी, ऐसे ही वह मेरे लिये मिट जायेंगे—ऐसे ही हम दोनों सबके लिये मर-मिट जायेंगे। ....पर जीजी,

तुम मुझे ऐसे देख रही हो जैसे मै बिल्कुल पगली हूँ। बिल्कुल पगली थोड़े ही हूँ, हाँ तुम्हारे जितना तो नहीं जानती। सो क्या उस बातपर तुम मुझे यो देखोगी? न-न, मुझपर तुम बिगड़ नही पाओगी। अच्छा, चलो अब जीजी, घर चलो हमारे। तुम रोटी तो बनाना क्या जानती होगी, क्या काम पड़ता होगा वहाँ तुम्हे ऐसा, पर तुम बैठी रहना, बताती जाना, मै बनाती रहूँगी। तुमसे कही नहीं होगी उन्होने—आज तो तुम्हे मेरे ही यहाँ खाना खाना पड़ेगा।...हाँ, और भी तो बात है,—आशीर्वादकी। आशीर्वाद दिया तुमने?—अब यहाँ देना पडेगा।—पहले दे दोगी, तब रोटी मिलेगी।"

यह कट्टो ऐसी बात करती है कि कहींसे बचनेकी राह ही नहीं छोड़ती। सवाल भी करती है, और जवाब भी अपने-ही-आप दे देती है, जिससे 'नाहीं' करनेका मौका नहीं रहता। गरिमा इसकी यही बात देख-देखकर अचरज कर रही है। गरिमासे जो-चाहे-वो करवा लेती है, और हर बातमे अपनी ही चलाती है,—पर ऐसे ढँगसे कि कुछ कहते नहीं बनता, बिल्कुल अखरता ही नहीं।

यह आशीर्वाद देना-दिवाना तो किसी शिष्टताके कोडमे उसने सीखा नहीं। न वह आशीर्वाद देनेको अत्यत उत्सुक है। पर—

"जीजी, चुप क्यों हो? देखो, ऐसे। मै बैठती हूँ, घुटनेके बल, फिर पैरोमे पड़ूँगी, तुम मेरे सिरपर हाथ रख दोगी,—प्रेमसे जैसे माँ हो। फिर मै उठ जाऊँगी, और मुझे गले लगा लेना। पर देखो, असली मनसे करना, नहीं तो मुझे फिर कसरत करनी पड़ेगी। जब तक ठीक नहीं होगा, तबतक छुट्टी नहीं दूँगी।"

कट्टो बात तो बहुत बड़ी-बड़ी करती है, पर बोलती बिल्कुल बच्ची-सी है। गरिमाने अपने लिये 'माँ' सुना, और उसका हृदय न जाने एक कैसे

रससे भीना हो गया। अब तो सचमुच इस लड़कीको वह कंठसे लगा लेना चाहती है। इस लड़कीसे तनकर रहा नहीं जायगा,—वक़्त-वक़्तपर बहुत पंडिताईकी बात कर जाती है तो क्या? उसके भीतर जो प्रसुप्त मातृत्व है, इस लड़कीने अपने लड़कपनकी मीठी बोलीसे छेड़कर उसे चंचल कर दिया है। तानसेनने गानसे पत्थरोंको पिघला दिया, बच्चोंने अपने बचपनसे न जाने कब-कब क्रूर मनुष्यों और हिंस्र पशुओंको पिघला दिया, आर्तोंकी पुकारने न्याय-कठिन परमात्माको पिघला दिया,—तो कट्टोकी हठ-मचलने शिक्षा-कठिन गरिमाको पिघला दिया तो इतनी बड़ी बात क्या हुई?— मातृत्वके गौरव और स्नेहसे कोमल गरिमाने कहा—

"कट्टो, मै.... "

लेकिन तब तक तो वह घुटनेके बल बैठ गई थी। उसने माथा पैरोमे लगाया,—पैर खींच लिये और गरिमा पानी-पानी हो बह चली।

स्नेहार्द्र-कंपित गरिमाने रोया—

"हे-हे, कट्टो,..."

पर कठ बहुत भर रहा था,—हाथसे सिरको थपका और फिर दोनो हाथोंसे उठाकर, आलिंगनमे बाँध लिया।

छूटते ही कट्टोने कहा—

"मेरी अच्छी जीजी, कैसी भली हो! जीजी, चलो,—मेरे घर नहीं चलोगी?"

गरिमा बहुत बार नहीं रोई है। पर यह रोना तो बड़ा सुखप्रद मालूम हुआ। वह इससे हरी हो गई, जैसे बारिशसे झड़कर, धुलकर चुकी नई कोंपल हो।

" कट्टो, तू मेरे साथ नहीं रह सकेगी ? मेरे साथ घर चली-चलो तो बड़ा ही अच्छा हो। ऐसी ही कट्टो बनकर रहना, सब तुझे प्यार करेंगे। तुझे कोई प्यार न करेगा तो किसे करेगा ? "

" मै साथ चलूँगी—कैसी अनिष्ट बात कहती हो जीजी ? इस गाँवको छोड़कर और कहीं रहूँगी तो डालसे टूटे फूलकी तरह ज्यादे न रहूँगी। और वहाँ तुम्हारे घरमे मेरे जैसी गँवारिन क्या भली लगेगी ? जीजी, मेरी तो यही जगह है—यही अम्माँका जामन-वाला घर।... पर यह ऐसी बात क्या कह दी ? क्या उन्होंने कहा था ? "

कट्टो इस स्थलपर क्यों छूती हो ? वह अभी-अभी फूटकर चुका है, अभी तो दर्द देता है। पर, मातृत्वकी इस हिलोरमे गरिमा इस हल्के-से दर्दको बेपीर झेल गई। बोली—

" उन्होंने तो नहीं कहा। वह क्यो कहते ? पर कहो तो, कह देऊँ ?"

" नहीं-नहीं-नहीं,...."

" अब तो जरूर कहूँगी, डरती क्यो हो ? "

" उन्होंने 'हाँ' कर भी दी, तब भी मै नहीं जाऊँगी। "

" तब तो तू आप जायगी। " एकदम तूसे उसने ऐसी गहरी बात कह डाली।

कुछ देर और बात हुई। पर ऐसी सब बातें हम नहीं बता सकते। ऐसी जगह ज्यादे खोद-बीनकी जिज्ञासा भले आदमी नहीं किया करते। इससे मन-मनमे जो चाहे समझ लीजिये, पर जोरसे कहिये मत और पूछिये मत।

उसके बाद कट्टोने अपनी जीजीसे अनुरोध किया—

"घर चलो। रोटी मैं बनाऊँगी, तुम देखती रहना, बताती रहना। "

सो तो नहीं होगा ।–गरिमा क्या चुप बैठी रहेगी, वह भी जरूर बनायगी; बनायगी नहीं तो मदद तो खूब ही जोर-शोरसे देगी । लेकिन-

" लेकिन, मै अभी आती हूॅ,—मेरी कसम। तू चल इतने....। मै.... मै ज़रा...."

बस-बस-बस । कट्टोसे ज्यादे मत कहो । वह समझ गई है । वह चली जाती है, अभी भागी जा रही है । खूब बाते करो,–तुम दोनोंके बीचमे अब वह कौन है ?

अब उसे एकदम अकेले भाग जानेकी बड़ी झटपट पड़ गई ।—पर बातोंमे जीजी आना भूल न जायँ ! बाते ही ठैरीं,—क्या अचरज है ! इससे चलते-चलते याद दिला गई—

" देखो, आना । कहीं....! तुम्हे मेरी...."

" हाँ, जरूर, जरूर, जरूर । "

कहती रहो कितनी ही ' जरूर ' कट्टो तो वह गई—वह गई ! छोड़ गई है तुम्हे, अब खुलकर बाते कर लो—।—लेकिन झटपट–उसके यहाँ भी जाना है ।

नई बहूने (अब तक भी टोहमे लगी हुई, सबसे नये मिनटकी ओर ज्यादे-से-ज्यादे मिर्चवाली कोई खरी-खोटी सुनने और सुनानेके लिये सदा घात देखनेवाली प्रौढ़ाओकी रायमे,—बड़ी बेहयाईके साथ) अपने नये वरको ढूँढ़ निकाला,—

" जी यह कट्टो मेरे साथ चली जाय तो कैसा ? "

क्या ?—कट्टो ? फिर कट्टो ?—मानों कुछ गलत सुना गया है इस लिये प्रश्न-सूचक दृष्टिसे देखा ।

"........?"

"क्यो, सुना नहीं ? या कट्टोको जानते नहीं ?"

"क्या ? कट्टो—? तब ?"

"वह मेरे साथ दिल्ली जाय तो कैसा ?"

"नहीं।"—झटकेसे पूरा ज़ोर निर्णयमें फेककर कहा।

"नहीं ?"

"हाँ, नहीं। ज़हर रखना चाहो पास, रक्खो। पर मै नहीं कहूँगा, मैं नहीं रक्खूँगा। कभी मरनेका लालच आ जाय तो खानेको पास ही तैयार रहे !—नहीं। कट्टोको तुम्हारे साथ या अपने साथ कभी रखनेको नहीं कहूँगा। समझीं—?"

समझी-भी और नहीं भी समझी। लेकिन इस बारेमे और ज्यादे कुछ बढना ठीक नहीं समझा।

फिर बादमें बहुत ही नियमित, दोनों ओरसे पाबंद, और अत्यंत उचित रूपमे थोड़ासा परस्पर प्रेम-परिवर्तन हुआ। (नहीं, आप नहीं सुन पायेंगे,—धीरज न खोये और मुँह न बनाये)। जब पाबन्दी, शिष्टता और औचित्यकी परिधि आ गई तब विवाहके बादके प्रथम दिनका—दिनका—प्रेमालाप रोक रखना पड़ा और गरिमा कट्टोके घरके लिये चल दी।

३१

खाना तो अब हुआ जाता है। रायता हो ही गया है। सब कुछ हो गया है,—बस अब पूरी उतारनी...., हें!—यह चून तो अभी निकला ही नहीं है, परात तो यूँही पड़ी है!! उसनेगा, तब कहीं...., इतने कढाई जल....! यह सब सोचकर, साग-सनी कर्छीको झट-से छोड़, हड़बड़ाई उठ खड़ी हो गई। देखो न, यह जीजीके झंझटमें आटा रह ही गया,—पर लो, अब सब हुआ जाता है। वह चलनेको हुई ही कि—

"क्यों—क्यों?—क्या हुआ?"

कट्टोने हँसते-हँसते बताया—

"सब हुआ, आटा तो निकला ही नहीं। ब्याहके सामान तो हो गये,—दूल्हा कहाँ है!"

"लो मैं लाई।"

"नहीं-नहीं..."

"कहाँ है?"

"वह रहा मटकेमे।"

गरिमा परात लेकर आटा लेने गई। कट्टो अपने सागमें लग गई। साग चलाते-चलाते—देखा यह क्या?

"जीजी, चून खिडाँ दिया!"

"—उठाये देती हूँ।"

"हे-हें, धरतीका चून !"

उठानेको हो ही रही थी कि वहीं छोड़ दिया। फिर कट्टोका ख्याल गया—

"जीजी, इतना चून नहीं, थोड़ा।"

एक एक मुट्ठी डालती जाती और पूँछती जाती—'इतना, इतना ?' आखिर घटते-घटते ठीक परिमाणमे आया ही,—डरते-डरते कितनी मुट्ठी कम की गई, पता नहीं।

जीजी जब चलनेको हुई कि पता चला उसकी आस्मानी रंगकी बेलदार साड़ीका सामनेका हिस्सा सफ़ेद हो गया है, और कोहनी तक हाथ मानों भूरे पावडरसे सफ़ेद कर लिये गये है।

"जीजी, यह क्या कर रही हो ? आज सबको हँसानेकी ठानी है या यह हाथका और साडीका रंग नहीं भाता ?"

"बोल-बोल, और क्या करूँ ?"

"करो यह कि बैठो, और मुझे हुक्म दो। सबके अलग अलग काम होते हैं। कोई किसीका करे तो बड़ी गड़बड़ हो जाय। तुम्हें तो तुम्हारा काम ही सोभता है। चून-दालका और बासन-भाँडोंका काम तो तुम्हारा है नहीं जीजी। मेरा है, मुझे करने दो। और तुम्हारा जो देख-नेका, बतानेका, करवानेका है,—सो तुम करो।"

"नही-री,....मै अच्छी लोई बनाती हूँ, पूरीकी।...."

रोज़-रोजकी बात तो कहती नहीं। रोज तो उससे हो भी नहीं सकेगा। लेकिन आज तो बग़ैर काम किये वह नहीं मानेगी। जरूर कुछ पूरियाँ, और अपनी साड़ी और अपने हाथ खराब करेगी,—चाहे पसीना आये, आँखोंमें पानी आये, घी उछटकर हाथ जला दे,

और चाहे कट्टोको कितनी ही अड़चन पैदा हो ! कट्टोका कहाँ भाग कि ऐसी अड़चन पैदा करनेवाली उसके यहाँ आई है ! वह मदद करनेके नामपर सिर्फ़ काम बढ़ा रही है, और कट्टोको अपने खानेके सामान-हीकी नहीं, इस गरिमाकी और गरिमाके सामानकी भी फ़िक्र करनी पड़ रही है,—पर चाहती है, रोज़-रोज़ ऐसा ही हो। कोई मिले तो उसे प्यार करनेवाला, वह उसे सिंहासनपर बैठाकर, चौबीसों घंटे उसकी चाकरी बजायेगी। और इसीमे वह कृतार्थ होगी। आज वह कितनी ख़ुश है,—इसको बहुत कम समझ सकते है।

इसी तरह खाना आखिर बन गया है। कट्टोकी अम्माँ भी अब आ गई है। बहूकी लोरियाँ वह ले चुकी है। कैसी महारानी बहू है। बड़-भागिन हो, पूतोंसे सुखी रहे, राज करे, आदि अपनी मातृहृदयकी उछाह-रससे भरी असीसे वह उसपर बरसा चुकी है,—कुछ हर्षके आँसू भी।

वही माँ इस नौसिखुए हाथोंकी बेढब कार्रवाईको देखकर बड़ी खुश हो रही है।

तब सत्यको बुलाकर जिमाया गया। गरिमाकी साड़ी कानके आगे तक खींच ली गई है। पर वह ज्यादे बोल नहीं रही है। सत्य भी ज्यादा बोला नहीं। माँने जो बात छेड़ी तो सत्यने उखड़ी 'हाँ—हूँ' से उसका स्वागत किया, इससे बात करनेका माँका उत्साह भी भंग हो गया है। कट्टो, तो मानो अपनी कढ़ाईकी सम्हालमे एकदम व्यस्त है ही। उसे तो सत्यकी ओर आँख उठानेकी भी छुट्टी नहीं मिल रही है। और यह कौन कह सकता है कि वह इस प्रकारकी छुट्टी नहीं चाहती। उसका मुँह मानों कामकी भीड़ने सीं रक्खा है। उससे, इसलिये, एक भी शब्द

नहीं निकला है। हाँ, काम बेधड़क चल रहा है। न सिर उघड़े-बेउघड़ेकी पर्वाह है न यह कि हाथ कहाँतक खुले हैं, और न इस बातकी ही कि थालीमें पूरी ठीक जगह पड़ती है या नहीं, क्यों कि अक्सर ठीक उसी समय कढाईके घीमे कुछ खास काम निकल आता है, और आँखे उस घीकी ओर ही रखनी पड़ती है।

वृत्तांतके अध्यायका यह पृष्ट, या कहें यह पैराग्राफ़, इन सब जमी हुई चुप्पियोंके कारण, इतना नीरस हो गया है कि हम उसे पाठकोंके सामने नहीं रखना चाहते। इसलिये—

* * *

" जीजी बैठो न।"

" तुम भी तो बैठो।"

" मै पीछे खाऊँगी। निपटाना भी तो है।"

" निपटा लो तो फिर। मै भी पीछे ही खाऊँगी।"

" नहीं जीजी, यह कोई बात है! तुम तो मेहमान हो, जीजी हो।"

" अच्छी जीजी हूँ, और अच्छी मेहमान हूँ,—इतना तो काम लिया कि—"

" नहीं, नहीं, मैंने तो यह परोस भी दी थाली—"

" परोस दी तो रक्खी रहने दो। ठंडी काटेगी तो है नहीं।"

कट्टो हार गई। और यह हारना कैसा अच्छा लगता है! कट्टोने कहा—

" अच्छा तो लो, मै भी अब निबटी। तुम्हें देर तक भूखा नहीं —रक्खूँगी। पर तुमने फैलानेमें मदद दी तो अब निबटानेमें भी तो...."

" बोलो, बोलो—"

तब मिलकर उठाई-धराई की गई। कट्टोने आधा काम किया, आधा बताया—' ऐसे करो '। इससे काममें कुछ शीघ्रता हुई हो सो बात नहीं, पर वह देर किसीको माल्लूम नहीं हुई,—और ऐसा लगा जैसे काम सचमुच जल्दी हो गया।

तब खाना हुआ दोनों सहेलियोंका। उनहार-मनुहार, छीन-झपट और गुदगुदाहट, और ज़बर्दस्ती आदि-आदि बहुत-से व्यंजन भी थालीके व्यंजनोंमें मिल गये। और इनके कारण भोजन बहुत स्वादिष्ट हो गया। वे कट्टोने बनाये थे, इनके बनानेमे ज़्यादे श्रेय गरिमाका था। शहर दिल्लीमे वह नियमकी विधि-निषेधकी रेखाओंसे घिरकर कई कोनोंकी ऐसी ज्यामितिकी शक्ल बन गई थी, जो हिल-हिला नहीं सकती। यहाँ, कट्टोके यहाँ, आकर वह रेखाएँ हट गई। तब जो कुछ दबा हुआ, घुँटा हुआ और घिरा-हुआ था, वह तनिक तीखे वेगसे उमड़ पड़ा। इसीलिये इस एक थालीमे खाते वक़्त उसने कट्टोके साथ ऐसा दगा मचाया कि क्या कोई मचा सके।

सहेलियोंका यह काम हम नहीं देखेगे। क्यों कि क्या ठीक, इस ऊधम-दंगेमे धोती कहाँ बहक जाय, पल्ला कहाँ हो जाय, और हाथ न जाने कहाँ—कहाँ पड़े। इसलिये, अगर सभ्य हो तो आँख मींचकर लौट पड़ो। कहीं पता चल जाय, और आयंदा वैसा ऊधम ही बँद हो जाय,—तब तो दुनियाकी भारी क्षति होगी;—हम सच कहते है।

३२

लेकिन दिन एक-से नहीं रहते। काल चला जाता है—और चीज़ोंको नई-पुरानी कर जाता है। नईका काम है पुरानी हो जायँ, पुरानीका काम है मर जायँ। वह मरीं, फिर शायद किसी विशेष पद्धतिसे नई हो जाती है। वह विशेष विधि क्या है, सो हम क्या जाने ? जिसे विद्वानोंने खोजा, मर गये पर नहीं पा गये; खोज रहे है, मर रहे हैं, पर नहीं पा रहे है;—उसीको हम क्या जाने ? हमसे बहुत ज़्यादे मेहनत नहीं होती, इस खोजने-खोजनेमे ही, और पानेके लालचमे खोने-खोनेमें ही, हमसे जिंदगी नहीं बितायी जायगी। हमने तो एक शब्दमे कह दिया—'परमात्मा', और मानो हमने पा लिया। हमारी छोटी-सी ग़र्ज तो पूरी हो गयी। पर लोग है, जो खोजनेसे थकना ही नहीं चाहते। कहते है, हम पाकर ही छोड़ेगे। हम उनको धन्यवाद देते है, हाथ जोड़ते है, बड़ी श्रद्धासे 'नास्तिक' कहते हैं, पर कहते है—'भाई, खूब खोजो, जितना बने उतना। पर मरनेसे एक दिन पहिले समाधान नहीं मिल पाये तो, हमारे साथ हो जाना और कहना—'परमात्मा।' मिल गया तो, हम इसका ज़िम्मा लेते है कि जितने कोष मिलेंगे हम ज़बर्दस्ती उनमेसे 'परमात्मा' मिटा डालेंगे।

पर हम बहक गये। कट्टो और गरिमाका और हमारे वृत्तान्तका परमात्मासे कोई विशेष प्राइवेट सम्बन्ध नहीं है। सिर्फ़ नये-पुरानेकी बात

थी। सो बात यह है,—गाँवका स्वाद पुराना हो गया है: कट्टोसे मन अब वैसा नहीं खिचता, पहिले-जैसा नहीं मिलता और नहीं बहलता, अब अखबारोंकी जरूरत अनुभव हो रही है,—किताबे भी तो नहीं है! उनसे अच्छी बोलती है, बहुत तनकर भी नहीं रहती, पर ये गाँवकी औरतें,— ऊँह, उनसे दिल नहीं मिलाया जा सकता; ठीक बोलती नहीं, ठीक बैठतीं नहीं, ठीक बात भी तो नहीं समझतीं। बोलो,—बात भी तो नहीं समझतीं,— फिर कैसे दो मिनट उनसे चर्चाको जी चाहे? वहाँ दिल्लीमे लता थी, जाह्नवी थी, कभी घर आ जाती थीं, होता तो वहीं चली जाती थी,— उनसे बात तो होती थी दुनियाकी और कुछ अक्ककी, यहाँ तो वह बात नहीं। दुनियाकी कुछ ख़बर नहीं रहती,—एक ही धंधा, रोटी-चूल्हा और पति और आपसकी 'तू' और 'मै'। वहाँ बाग़ थे, बग़ीचे थे, जी-चाहा जब साफ़ हवा ले ली,—यहाँ हवा भी गंदगीमेसे छनकर आती है, गाँवके चारों तरफ़ जहाँ-देखो घूरा, उसकी हवा,—क्या, वह, कार्बन, कार्बन आक्...ख़ैर, कुछ—तंदुरुस्तीको खराब कर देगी। मैं देखो कैसी सूखी-सी....।

सारांश यह कि जब नयी बात पुरानी-बूढ़ी हो गई तो ये दोष सब उसके ऊपर सिकुड़नकी तरह, गिन-लो ऐसे, फैल गये।

तब एक दिन यह चिट्ठी भी बाबूजीकी आ ही गई।

"—सत्य, गाँवमें तो काफ़ी दिन हो गये। अब चाहो तो यहाँ आ जाओ। गिरीका मन पूरी तरह न लगा हो, तो तुम जानते ही हो, अचरजकी बात नहीं। वह ऐसी जगह रही नहीं। मुझे और कुछ नहीं, कहीं स्वास्थ्यपर असर न पड़ जाय। स्वास्थ्य पहले, सब कुछ बादमें। लिखो, कब आ रहे हो, ताकि गाड़ी भेज दी जाय। जल्दी ही आ जाओ।

गरिमा अच्छी होगी। प्यार कह दो, कहो, मुझे चिट्ठी लिखना एकदम भूल न जाय। और सब अच्छे हैं।

तुम्हारा—

पुनः ....

चाहो तो आनेका तार दे देना—।

'भ. द."

तबतक सत्य घर जानेके काफी पक्षमे हो गया था। गरिमाके स्वास्थ्यकी ओरसे निश्चित वह नहीं रहना चाहता। गरिमाने बताया है, गर्मी है, हवाकी तबदीली चाहिये, यहाँका पानी ठीक नहीं, जी भिचला-सा अनमना-सा रहता है। Aloofness की (एकाकी) जिंदगी बितानी पड़ती है, सोसायटीका अभाव है, दिमाग़को खुराक और ताजगी नहीं मिलती,—शायद इसीसे ऐसा है। गरिमाने यह भी कहा था—

"पर मुझे कुछ नहीं। तुम जहाँ अच्छे, मै भी वहाँ ही अच्छी। तुम्हे गाँव माफिक है तो ठीक है, मेरा क्या?"

यह अंतका उल्टा लगनेवाला तर्क ज़्यादेतर तुरंत सिद्धि दिलवा देता है। यह बहुत कम चूकता है, और मर्मपर इस प्रकार बैठता हैकि सौ-मे-नित्यानवे हिस्से सिद्धि हुई-ही रक्खी समझो। अश्रु-सिंचन-तर्ककी यह सूक्ष्म और हल्की पर्याय है, पर गला देने, पिघला देने और कहीं-का न छोड़नेमे उससे कहीं कारगर। सोचते तो थे ही जानेकी, इस चिट्ठीने मानों दर्वाजा खोल दिया, कहा—'आओ, आ जाओ।'

फिर चलनेके साज-सामान होने लगे, पुलिंदों और ट्रंकोंकी सँभाल और बाँध। नयी बहू जा रही है, यह ख़बर, कुसलोने इससे, और

उसने दूसरे उससे, और फिर तीसरे और चौथे....इसप्रकार 'उस-उस' के पँखोंपर चढ़कर गाँव भरका चक्कर लगा आई। इसी चक्करमें मिली वह कट्टोको।

"जीजी जा रही है! वह भी जा रहे है!"

वह कई दिनोंसे नहीं गई तो क्या, और जीजी नहीं बोलती तो क्या, अब जाये बग़ैर उससे नहीं रहा जायगा।

पहुँची।—बहुत-सा सामान उठाना-धरना है। कपड़े-लत्ते कुछ मैले हैं, सो अलग पोटलीमे बँधेगे। और ये धोबीकेसे नये मँगाये है,—सबके सब ट्रंकोंमे चिने जायेंगे। यह भी तो ख़्याल रक्खा जायगा कि कौन किसमे, कौन किसमे।—यह सब काम देखकर कट्टो चुप इतजार करने लगी है, जीजी वक़्त पायें, देखे, तब बोले। जो वह मैली धोती वहाँ लटक रही है, उसे देखनेमे अचानक ही यह कट्टो दीख गई है। पर अभी तो और भी बहुत-से कपड़े है। निगाह उठानेकी कब फ़ुर्सत मिलेगी,——कुछ ठिकाना तो नहीं।

गरिमाके मनकी पूँछते हो? वह अपनेको मन-ही-मन दोषी समझ रही है। देखकर भी नहीं देख रही है,—सो भी अनुभव कर रही है कि दोष हो रहा है। पर दोषको मिटानेकी चेष्टा उसके-जैसे स्वभाववालीको कठिन हो रही है। इसलिये, वह अपने मनको भुलानेके लिये, कि जैसे मन मान ले सचमुच कट्टो दीखी ही नहीं, धोबीके कपड़ोंके ढेरमेंसे वह अत्यधिक व्यस्तता प्राप्त कर लेना चाहती है।

आखिर, कट्टोने कहा—

"जीजी!....

अब तो यह व्यर्थ भुलानेकी कोशिश, यह अभिनय, समाप्त करना ही पड़ेगा।

" कट्टो !...."

" जीजी, जा रही हो ? "

" हाँ । "

" आओगी ?—कब आओगी ? "

" सो तो वह जाने । "

" नहीं आओगी ? "

" क्या कह सकती हूँ, कट्टो ? "

" जीजी, आना चाहो, आ सकोगी । क्या और कुछ रोज नहीं रह सकतीं ? "

" कट्टो, मन नहीं लगता । कोई बोलनेवाला नही मिलता । ऐसी जगह मै रही भी नहीं कभी । "

" पाँच-छ: रोजसे मैं आयी नहीं । क्या मालूम था, मेरी जीजीका मन नहीं लग रहा है । जीजी, न होता तुम्हीं बुला लेतीं । बुलाने-पर सिरके बल आती । जीजी, कट्टोसे रूठोगी तो कट्टो क्या करेगी ? "

जीजी कुछ बोल नहीं सकी । कुछ ' नहीं—हाँ ' कर दिया । कट्टोसे छोटा बनना आता है, और जिससे छोटा बनना आता है, उसे प्यार पाना आता है । जब इस तरह पीछे पड़ जाती है तो कट्टोको प्यार न देना कठिन हो जाता है । सो ही गरिमाकी अवस्था है ।

" जीजी, नाराज हुई हो तो बता दो । कुसूर हुआ हो तो बता दो । अब नहीं होगा । और देखो, " उसने आँख मिलाकर, और फिर पैर छूकर, हाथ जोड़ते-हुए कहा—"-देखो, जो हुआ सो माफ़ कर दो । ....कर दिया न ? देखो जीजी, कट्टोकी बुरी बात मनमे ले आओगी तो ठीक नहीं । तुम्हारे मनको भी चैन नहीं मिलेगा, मै तो यहाँ मरती रहूँगी ही । "

गरिमाने दोनों हाथ उसके कंधेपर रक्खे।

" कपड़े ठी...." कहते-हुए सत्य भीतर आये। देखकर ठिठक गये। वह अब कट्टोके सामने पड़ते घबड़ाते है। पदध्वनिपर मुड़कर कट्टोने देखा—सत्य है। उसने पैर छूकर, पूँछा—

" तुम जा रहे हो?—जीजी फिर कब आयेगी?

" कह नहीं सकता।"

" बिल्कुल नहीं कह सकते?"

" कैसे कह सकता हूँ?"

" तो फिर कब मिलना हो?—कट्टोका कहा-सुना माफ कर देना। और कुछ हो तो लिखना। कट्टोको पढाया, अब उससे कुछ सेवा नहीं लेना चाहते?"

मास्टर चुप।

" तो मै जाती हूँ। जीजी, इनको कुछ हो जाय तो मुझे जरूर-ज़रूर लिखना। और तुमसे जब बने यहाँ आना। घर तो तुम्हारा यहीं है अब। और तुम दोनो माफ कर देना। कट्टो बड़ी भूले करती है, बड़ी मूरख लड़की है। और तुम दोनों सुखी रहना। और कट्टोकी भी कभी याद कर लेना, क्यों कि कट्टो तुम्हारी बहुत-बहुत याद करेगी।"

कट्टो फिर एक बार दोनोंको नमस्कार करके और जीजीसे गले मिल-कर चली गई।

सत्य अब जल्दी-जल्दी किसी काममें नहीं लग जायेंगे तो रो पड़ेगे, इससे झट-झट कपड़े फैलाने और इकट्ठे करने लगे। कहा—

" जल्दी करो—जल्दी।"

गरिमाको आँसू छिपानेकी बहुत ज्यादे ज़रूरत नहीं है। इसलिये वह स्वतन्त्रतासे कपड़े भिगो रही है।

३२

गरिमा सत्यका, और कट्टो बिहारीका विवाह हो गया है। और बहुत कुछ काम हमारा खतम हो गया है। इक्कीसवीं सदीके अनुसार हम संतानके शौकीन नहीं है,—इसलिये उस बात तक कहनेके लिये ठैरेंगे नहीं।

सत्यने दिल्ली जाकर देखा, यह मकान ज्यादा खुला और अच्छा है। पत्थरका फ़र्श है, नल-बिजलीका आराम है। और भी सब सुविधाएँ-ही सुविधाएँ है। इसलिये बाबूजी कहते हैं तो वह दिल्ली ही रहेगा।

रहना अब दिल्लीमे ही होने लगा। बिहारीपर भरोसा नही है। बिहारी कच्चा आदमी नहीं है कि किसीकी खातिर टूट जाय,—बाबूजी यह बहुत अच्छी तरह जानते हैं। इसीलिये सत्यको अपने पास बसाया है।

तो अब माँको भी गाँवसे बुला लिया जाय। माँ आई तो; पर बाप-दादोंका मकान छोड़नेका सदमा साथ लेकर आई, और थोड़े दिनो बाद यह घर भी और यह लोक भी छोड़ गई। दो हफ्तेके अनंतर गरिमाकी माँका भी देह छूट गया।

तब घरके भीतरका बोझ गरिमाके सिरपर आया। उसने काफी अच्छी तरह निबाहा। पर निबाहनेमे नौकर अब काफी लगते है। गरिमाने नौकरोंसे निबटनेका भी एक काफी जटिल काम बढा लिया है।।

बाबूजी अब इधर ढीले हो चले है। बाहरकी दौड़-धूप सत्यके सिर आ पड़ी है। इस तरह सत्यके निर्बाध आदर्श-चिंतनमे बाधा पड़ती है। वह जो होता है करता तो है, पर झींकते हुए, झिझकते-हुए और शर्माते हुए।

अब बाबूजीने उसे समझाना शुरू किया है और गरिमाने टेढे ढंगसे लेना। आदर्शकी आराधनाका काम उसकी निगाहमें कितना ही बड़ा काम हो, दूसरोंको विश्वास कराना कठिन है। लोगोंकी निगाहमे वह सब कुछ निठल्लेपनका बहाना है, अकर्मण्यताका सफाई-का नाम है। निठ-ल्लेपनसे दुनिया नाखुश रहती है, और फिर आदमी खुद भी अपनेसे नाखुश रहने लगता है।

गरिमा अब-तब ऐसी चोटे करती है कि भीतर-ही-भीतर झुलस रहते है। पर कहते कुछ नहीं बन सकना। घरका जो अधिकार है, कहा जा सकता है, वह गरिमाके अनुग्रहका फल है। और गरिमा इस सत्यका प्रयोग खूब होशियारीसे और खूब निशानेसे करना जानती है।

इधर बाबूजीने अदालतका थोड़ा-बहुत काम पहले ही लेना शुरू कर रक्खा था। अब ज्यादे-ज्यादे लेने लगे। उधर ऊँच-नीच भी समझाते जाते थे। परिणाम यह हुआ कि एक रोज सत्यका नाम भी बाकायदा वकीलोंमें दर्ज हो गया।

धीरे-धीरे ठाठ भी बढे, नखरे भी बढे, और अधिकार-प्रयोग भी। जितनी वकालत कम चलती थी, उतने ही ठाठकी ज्यादा जरूरत थी,—शायद व्यवसायकी नीतिके तौरपर। और जितनी ही वकालत कम चलती थी उतना ही नखरे और अधिकारप्रयोग तीखे होते जाते थे। मानों जो अदालतके खाली घंटोंमें, सूट-बूट-सज्जित अवस्थामें, आत्म-दर्पके विचार बंद हृदयमे उठते रहते हैं, वो घरमें ढक्कन खुलते ही, बदलेके साथ निकलते है।

बिहारी इम्तहान दे कर चला ही गया है। वह पास भी हो गया—और पास हुएको भी दस महीने होने आ गये। पत्र तो उसके आते है, पर पूरा

पता नहीं लिखा होता। बाबूजी जानते है फिक्र और ढूँढ़से कुछ परिणाम न होगा, इससे चुप है।

बाबूजी अब गरिमासे कभी-कभी तंग आते है। गरिमाका भी ख्याल है कि बाबूजी बुढ़ाकर चिड़चिड़े बन गये हैं। इसलिये अब वह उनकी बातको उतनी पर्वाहसे नहीं सुन सकती।

अब घर उसके हाथमे है। उस घरकी एक बात है?—दस बातें है। बाबूजीको ये सब कैसे समझाई जा सकती है? बाबूजी यह सब तो समझते नहीं, यों ही गरिमा बेचारीसे उलझ पड़ते है। उसे भी लाचार कुछ सीधी-सी कह देनी पड़ती हैं।

ऐसी अवस्थामे वह बिहारी कहाँ चला गया है? फिर-फिरकर बेचारे बापको वही याद आता है। अब वह जरा अस्वस्थ रहते हैं—खाँसी उठती है। बदन दर्द करता रहता है। सत्य नियमसे बँधे दो वक्त आता है। अब कामकाजी आदमी है, वकील है, बहुत तो फुर्सत पाता नहीं, दस धंधे है, सौ झँझटे है। बाबूजी तो बीमार हैं,—ज़मीन—जायदाद लेन-देनका भी सब काम उसीको भुगताना पड़ता है। लेकिन बाबूजी चाहते है, दस बार आये—सो कैसे आये? जब फुर्सत निकालकर दोसे ज़्यादे बार आता है तो इशारे-इशारेमे यह सब बात बाबूजीको समझाता है। बाबूजी आँख मीच लेते है,—मानों समझ गये हो। पर समझते नहीं, फिर वही उम्मीद करने लगते हैं।

हाय!—बिहारी कहाँ है? बेचारा बाप उसीकी याद करता है। इसका यह सफेद पका सिर बहुत कुछ जानता है, पर लाचार है। जानता है, बिहारी था जो सेकिंड भर न छोड़ता उसे—चाहे वकालत जाती चूल्हेमे। और वकालत नहीं जाती चूल्हेमें, जैसी कि अब सत्य उसे भेज रहा है। लेकिन बुड्ढा लाचार है। बिहारी—?

तभी दुर्घटना हो गई। मोटर टकरा गई, वृद्धके चोट आई, सत्य बच गया। सत्य श्वसुरको अस्पताल पहुँचाते ही ज़रा घर आ गया है। पीछे ही उसके बिहारी अस्पताल पहुँच गया।

वृद्धने पहिचान लिया—

"आ गया बेटा?"

"आ गया बाबूजी।—बस अब अच्छे हुए, घर चलेंगे।"

"बिहारी,—नहीं। दर्द बहुत है। दिन हो गये पूरे।"

"नहीं नहीं, बाबूजी। अभी मै कट्टोको दिखाऊँगा। और वह आपकी सेवा करेगी—और आप अच्छे हो जायेगे। कट्टो और कुछ जानती नहीं, सिवा सेवा करनेके। आपको वह चंगा करके छोड़ेगी।"

"कहाँ है,—कहाँ है वह, बेटा?"

"अब शामतक पहुँची। तार दे दिया है।"

"मै उसे नहीं जानता। तुझे जानता हूँ। तेरी पसंद कभी ग़लत नहीं हो सकती।"

"बाबूजी, वह देवी है।"

"बिहारी, दर्द बहुत है। बोलो मत बेटा, बोलनेसे मानो खून इकट्ठा जम जाता है।..."

कट्टो आई। कट्टोने सेवा की, आशीर्वाद पाया, सफेद पलकोंके नीचे रोती-हुई आँखोंके कुछ बहुत मीठे आँसू पाये। और पिता मर गये।

मोटर, कम्बख्त, रास्तेमे खराब हो गई थी, भीड़मे धीरेसे चली, यह और वह!—"हाय!" सत्यने कहा "मै आखिरी वक्त पिताके पास भी न रह सका।"

३४

अगले रोज़ यह चिट्ठी सत्यको मि०........एडवोकेटका चपरासी दे गया—

"बेटा सत्य, मेरे दो बेटे थे, बिहारी और सत्य। तुम्हें मैंने गरिमा दी, जिसपर मैने सबसे ज्यादे प्यार वारा और जिसको मैंने सबसे क़ीमती चीज़ समझा। अब बाक़ी चीज़ बिहारीको दे जाता हूँ। मि०........एडवोकेटके यहाँ........बैंकके 'करण्ट एकाउण्ट' के अतिरिक्त मेरी सम्पत्तिका सब ब्योरा है। वह ठीक कर लेंगे। बिहारीको शायद इसकी ज़रूरत पड़े। तुम तो लायक़ हो, कमा लोगे और दुनियामें अपनी जगह बना लोगे। पर बिहारीको तो उड़ानेके लिये शायद ये भी काफ़ी न हों।

तुम्हारा—भगवद्दयाल।"

पढ़कर सत्यको गुस्सा हुआ,—बदल गये। वह अब इस मकानमें भी नहीं रह सकते। बिहारीके दानपर वह नहीं रहेंगे—एक मिनट भी नहीं रहेंगे। ये सब विचार और उनका कारण समझाकर उन्होंने गरिमासे कह दिया। गरिमा मकान छोड़नेको राज़ी नहीं हुई। मत हो,—पर सत्यका आत्म-सम्मान इतना सस्ता नहीं है। इसी क्षण कुछ अपना सामान लेकर और नक़द सौ रुपये लेकर वह चला गया। एक छोटा-सा घर किराये ले लिया, और वहाँ रहने लगा। मि०........एडवोकेटको लिख दिया—

" मि०........, एडवोकेट,

मैने मृत मि० भगवद्दयालकी जायदाद परसे कब्जा छोड़ दिया है। आप जब चाहे मुझे आफ़िस बुलाकर सब समझ सकते है। उनकी लड़की—मेरी स्त्री—अभी उसी मकानमे है। उसके लिये मैं ज़िम्मेदार नहीं हूँ।

आपका

........"

बिहारीको पता चला। बिहारीसे कट्टोको।

पता आखिर मकानका लगाया ही। एक खाटपर बैठा सत्य सोचमे है। जीवनपर दृष्टि डाल रहा है और उसे समझनेकी चेष्टा कर रहा है। उस सारे जीवनमे कोई रीढ ही नहीं दिखाई देती।

आहट हुई, आँखें उठीं, देखा—कट्टो है! जहाँ गरिमा नहीं आई, इंकार कर दिया, जहाँ अभी कोई भी आस बँधानेवाला नहीं,—वहाँ कट्टो!!—कट्टो, जिसको लांछित और अपमानित किया है, वही कट्टो—क्या उपहास देने आई है?

" तुम घर क्यों छोड़ आये?"

" वह मेरा घर नहीं था।"

" यह कैसी बात कहते हो?"

" सच्ची—बिल्कुल सच्ची। वह बिहारीका है।"

" वह क्या पराये हैं?"

" हाँ, पराये हैं।"

" हें-हें, यह न कहो।"

" वह घर-भर मेरा पराया है।"

" हे, य' क्या कहते हो? ख़बर्दार, जो ऐसा कहा। मेरी जीजीका तुम—"

" देखीं तुम्हारी जीजी....। "

तब उसने गिरकर पैर पकड़ लिये—

" मेरी जीजीको कुछ नहीं कह पाओगे। क्या मै तुम्हारी कोई नहीं हूँ ? "

" क्या हो ?—कुछ नहीं, कोई नहीं। मैने अपने हाथसे तोड़कर तुम्हे दूर फेंक दिया, और उस........"

" हे, बस-बस। मेरी ख़ातिर बस। मै तुमसे कहती हूँ, उन्होंने घरसे न आकर गलती नहीं की। तुम्हीं क्यों आये ? "

" क्या मै बेहयाकी तरहसे रहता ? "

" मेरी प्रार्थना मानों, वहाँ चलो। हाथ जोड़ती हूँ। "

" यह नहीं कर सकूँगा, कट्टो। माफ करना। "

" नहीं ? "

" नहीं। "

" नहीं कर सकोगे ? "

" और सब कुछ कर सकूँगा। यह नहीं। "

" और सब कुछ ? "

" और सब कुछ,—हाँ। यह नहीं। "

उसने फिर चरण छुए—

" अपनी बातको याद रखना।"—वह चली गई।

अगले रोज़ आई—चालीस हज़ारके नकद नोट लेकर।

" न-न-न "

" बोलो नहीं, कह चुके हो । "

" कट्टो !...."

" कुछ नहीं, बस । "

" कट्टो, मुझे नरकमें मत डालो । "

" हैं, य' क्या बात लाते हो मुँहपर ! "

उन्हे रुपयेकी जरूरत थी। वह रुपयेकी आदतमें पड़ गये थे। यही कमी थी जिसने 'न-न-न'को कम करते-करते आखिर अनमने मनसे लेनेको बाध्य कर दिया। अब उनकी पैरोंमें पड़नेकी बारी आई। जो तना रहा, उसे रुपयोंने झुकाया। सत्यने कट्टोके पैर छुए—

" हैं !—य' काँटोंमें मत घसीटो...."

" कट्टो ! "

" एक अच्छा-सा मकान लो। मेरी जीजी वहाँ रहेंगी—यहाँ कैसे रहतीं ? "

" तुम्हारे कहनेसे सब करूँगा,—नहीं तो...."

मुँहपर उँगली रखकर कट्टोने कहा—

" चुप ! "

सत्य चुप।

" जीजीको मेरी कुछ मत कहना।—कहो। "

" कुछ नहीं कहूँगा।

तब फिर कट्टो सत्यको अचरजमें, बौखलाया, कृतज्ञतासे पानी-पानी होता-हुआ छोड़कर चली गई।

३५

"अब ?"

कट्टोने बिहारीसे पूछा—

"अब ?"

"अब हमारा यज्ञ आरंभ होता है।"

"मैं क्या करूँ ?"

"गाँव जाओ। बच्चियोंको पढाना—उसीसे गुज़ारा चलाना।"

"तुम ?"

"मैं भी गाँवमे जाकर किसान बनता हूँ।"

"उस....मेरे गाँवमें.... ?"

"नहीं।—कट्टो,—वही—दूर, फिर भी पास; अलग, तो भी एक। कहीं दूर गाँवमें जाऊँगा।"

स्वर हठात् बदल गया—मानों उसमें कुछ कसक आ मिली। जिज्ञासा की—

"यह रुपया ?"

"इसका उपयोग कुछ समझमें नहीं आता।"

"इतने पर्यटनसे इसका उपयोग नहीं समझ आया ?"

"नहीं। भिखारियोंको बाँटूँ, वो बढ़ते हैं। किसानोंको दूँ, वो इस-पर आसरा डालनेकी आदतमें पड़ जाते हैं। जिसे देता हूँ, वह उसके चस्केमें पड़ जाता है, और फिर परिश्रमसे कटता और जी चुराता है। उद्योग चलाऊँ, तो और रोग पीछे पड़ जाते हैं,—मशीनका और केन्द्रित सम्पत्ति और केन्द्रित व्यवसायका। पैदा करो, और फिर खपाओ। जहाँ श्रम केन्द्रित हो गया वहाँ श्रमका मूल्य और श्रमकी

अस्लियत घट गई, और पैदायश बढानेकी फिक्र हो गई। उसके लिये फिर बलात् खपत बढानेकी तरकीबें सोचनी पड़ती हैं। यह अपनी अपनी खातिर पैदायश और खपत बढानेकी प्रवृत्ति मेरे ख्यालमे बड़ी गड़बड़ है। मेरे ख्यालमें यह पैसा ही गड़बड़ है। पैसेने परिश्रमका सम्मान नष्ट कर दिया और उसे किरायेकी चीज बना दिया।...."

"फिर ?"

"फिर क्या ? जिसका दाँव लगे मेरी सम्पत्ति लूट ले जाय। मेरी है वह किस बातकी ? मैने उसे कब कमाई है ? मैं तो कहता हूँ वकील-लुटेरे जो चाहे मेरा मकान ले ले, जो चाहे नकदी ले ले। मेरे पास जो भी पहले दस्तखत कराने आयगा, उसीको दस्तखत दे दूँगा। सोचूँगा,—बला टली। मेरी किसानीमे यह जायदाद और पैसा भी तो आफ़त ही डालेगे। फिर क्या मुझे किसानी सूझेगी ? या तो आसाइश सूझेगी, नहीं तो बहुत हुआ, लेक्चर देना सूझेगा। इस सबसे कुछ भला नहीं होता। इससे छोड़ो पैसेका ख्याल। तुम अपनी बच्ची पढानेकी बात सोचो, और मै अपने हल और बैलोंकी। क्यों ?—"

"हाँ"

"तो ?"

"तो हम अलहदा होते है ?"

"हाँ"

"हाँ"

एकने दूसरेके माथेका चुम्बन लिया। एकने दूसरेके आसूँ पोंछे। और दोनों फिर अलग-अलग राह चल दिये।—न जाने कब मिलनेके लिये ?

और दोनों फिर अलग अलग राह चल दिये।
—न जाने कब मिलने के लिये? [पृ. १५०

ठोक-पीटकर वैद्यराज